का मु क

अथवा

सतीत्व-महिमा

(मनीषी मिल्टन के 'कोमस' का पद्यानुवाद)

——×०×——

चतुर्वेदी श्री० रामनारायण मिश्र बी० ए०

(अनुवादक)

—.०.—

१९३८

प्रथमावृत्ति १०००]

[मूल्य १)

मुद्रक :—
श्री० सत्यभक्त
सतयुग प्रेस,
प्रयाग



प्रकाशक :—
नवयुग पुस्तक भण्डार
बहादुरगञ्ज,
प्रयाग



चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र, बी० ए०

भूमिका

किसी भी साहित्य की श्रीवृद्धि न केवल मौलिक रचनाओ के ही द्वारा होती है, वरन् अन्य भाषाओ की उत्कृष्ट तथा परम प्रशस्त उपयोगी रचनाओ के अनुवादो के द्वारा भी हुआ करती है। सुन्दर सदुपयोगी भाव किसी विशेष कवि लेखक तथा किसी भाषा विशेष के ही अधिकार मे नही हो सकते, वे किसी भी देश-जाति के प्रतिभा-प्रभा-पूर्ण मनीषी कवियो, सुयोग्य लेखको तथा सम्पन्न-साहित्य-सेवियो मे उद्भूत होकर आ सकते या आते हैं। सत्साहित्य ससार के किसी विशेष देश-समाज मे ही सीमित नही, वरन् उसका विस्तार बहुत ही विशद-व्यापक है। ससार के प्रत्येक देश तथा समाज मे, उसकी भव्य-भाषा मे उच्च-कोटि के कवि-कोविद हुए है और अद्यापि हैं। इसीलिये विविध साहित्यो मे पारस्पारिक आदान-प्रदान का होना ज्ञानवृद्धि एव उनकी श्री-सम्पन्नता के लिये अतीवावश्यक ही है। आज अङ्ग-रेजी-भाषा ससार-व्यापी भाषा बनी हुई है, उसका साहित्य सब प्रकार श्री-सम्पन्न और बहुत ही विशद है। कदाचित ही ज्ञान का कोई उपादेयोपयुक्त ज्ञातव्य विषय बचा हो जिस पर इस भाषा मे एक नहीं अनेक पुस्तके न प्राप्त हों। अङ्गरेजी-भाषा के साहित्य का यह स्पृहणीय विशाल भण्डार भी केवल उच्चकोटि के अङ्ग-रेज कवियो एव लेखको की मौलिक रचनाओं से ही परिपूर्ण

नहीं है वरन् उत्कृष्ट अनुवादको के द्वारा किये गये अन्य भाषाओ की उत्तम रचनाओं के सुन्दर अनुवादो से भी समलकृत है। प्राय. ससार के समस्त साहित्यो के परम प्रशस्त ग्रन्थो के अनुवाद अङ्गरेजी-भाषा मे पुष्कल रूप से प्राप्त होते है। साहित्य की समृद्धि इसी प्रकार बढती और बढ़ाई जाती है।

हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि भी इसी प्रकार न केवल मौलिक रचनाओं से ही होगी वरन् अन्य भाषा के सुन्दर सराहनीय ग्रन्थो के सफल अनुवादो के भी द्वारा हो सकेगी। यह कोई नई बात हिन्दी के लिये नहीं। हिन्दी-साहित्य-भण्डार का एक भाग तो अनुवादित ग्रन्थों के ही द्वारा भरा गया है। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाये कि हिन्दी-साहित्य का अधि-कांश भाग सस्कृत के ग्रन्थों के अनुवादो से बना है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास से यह स्पष्ट ही है कि अनुवाद कार्य हिन्दी के क्षेत्र मे बहुत समय पूर्व से ही प्रारम्भ किया गया था। सब से प्राचीन हिन्दी ग्रन्थ, जिसका उल्लेख मिलता है, पुष्प या पुड् कवि कृत संस्कृत के एक अलङ्कार ग्रन्थ का अनुवाद ही है। अनुवाद-कार्य हिन्दी के क्षेत्र मे बराबर होता रहा है, हाँ समय-समय पर इसकी गति कुछ रुक अवश्यमेव गई है। आधुनिक काल में भी अनुवाद-कार्य बहुत वेग के साथ किया गया है और बङ्गला तथा अङ्गरेजी साहित्य के सुन्दर ग्रन्थो के अनुवाद हिन्दी में उपस्थित किये गये हैं। इधर कुछ समय से इसमें कुछ शिथिलता सी अव-

श्यमेव देखी जाती है, किन्तु कार्य हो ही रहा है। अभी हिन्दी-साहित्य की वृद्धि के लिये अन्य भाषाओ के समीचीन सुन्दर ग्रन्थो के अनुवादो की आवश्यकता है।

इसी विचार से हम प्रस्तुत पुस्तक का हृदय से स्वागत करते है और इसके लेखक महोदय को साधुवाद देते है। हमारा और हमारे हिन्दी-कवियो का यह एक कर्तव्य-सा है कि हम अन्य भाषाओ के साहित्यो से उन सुन्दर सफल रचनाओ का अध्ययन एव अवलोकन करे जिनकी प्रशसा एक स्वर से सभी प्रसिद्ध कला-कोशल-कुशल सुयोग्य समालोचकों के द्वारा की गई है और उन रचनाओ मे उन कवियो या लेखको के विचारो, भावनाओ तथा काव्य कला-कौशल को देखे तथा उनका अपने काव्यो के साथ तुलनात्मक दृष्टि से मिलान करे, उनकी विशेषताओ को समझ कर ग्रहण करे, यदि वे इस योग्य हो। साथ ही अपने दोषो तथा अपनी सङ्कीर्णताओं का निराकरण करे। मिल्टन अङ्गरेज़ी-साहित्य-क्षेत्र मे परम प्रशस्त स्थान रखता है। वह विद्वान्, धार्मिक कवि माना गया है और उसकी रचनाओ को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। शेक्सपियर और मिल्टन पर अङ्गरेजो तथा उनकी अमर रचनाओ पर अङ्गरेज़ी-भाषा को बहुत बड़ा गर्व है—जो वास्तव मे सर्वथा सत्य तथा सार्थक है। दोनो महाकवि ससार के स्मरणीय महाकवियो की श्रेणी मे अच्छा स्थान पाने के सर्वथा अधिकारी हैं। शेक्सपियर यदि भाव-भावनानुभूति-व्यञ्जना, सरस सहृदयतादि गुणो के लिये प्रसिद्ध है तो मिल्टन

अर्थ-गौरव, पाण्डित्य और कला-कौशलादि के लिये स्मरणीय है।

श्री० चतुर्वेदी जी ने वास्तव मे बहुत ही बडा सराहनीय कार्य इस अनुवाद को हिन्दी मे प्रस्तुत करके किया है। मिल्टन की रचनाये ठीक वैसी ही कही जा सकती है जैसी हिन्दी-काव्य गगन के सितारे आचार्य केशव की रचनाये कही जाती है। दोनो मे अर्थ-गौरव और कला-कौशल के कारण क्लिष्टता अधिक है। मिल्टन की रचनाओ का समझना ही साधारण श्रेणी के लोगो का काम नही फिर उसके मर्म को पाना तथा उनका पूर्ण रसास्वादन करना तो बहुत दूर की बात है।

भारतीय विश्वविद्यालयो की परीक्षा के पाठ्यक्रम मे मिल्टन की रचनाये रक्खी जाती है—वे हैं भी इसी श्रेणी के योग्य। चतुर्वेदी जी अङ्गरेजी के पण्डित है, और मिल्टन की रचनाओ को बहुत चाहते तथा सराहते हैं। आपका अनुवाद इसीलिये मेरे विचार से, बहुत ही सुन्दर तथा सफल हो सका है। अनुवाद-कार्य की कठिनाइयो का अनुभव तो अनुवाद करने से ही हो सकता है—चतुर्वेदी जी ने कुछ प्रमुख कठिनाइयो की ओर अङ्गुल्यानिर्देश कर भी दिया है।

आद्योपान्त मिल्टन की मूल रचना के साथ इस पुस्तक के पढ़ जाने पर मेरी धारणा तो यही हुई है कि अनुवाद मे श्री० चतुर्वेदी जी को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। यद्यपि मै आपके

भाषा-सम्बन्धी विचारो से सर्वथा सहमत नहीं, मै तो भाषा की विशुद्धता का ही चाहने-सराहने वाला हूँ और भाषा को नियम-नियन्त्रित रखने के ही पक्ष का समर्थक हूँ—तथापि यह अवश्यमेव कह सकता हूँ कि आपकी सम्मिलित भाषा मे मार्दव, माधुर्य तथा व्यञ्जकतापूर्ण प्रसाद गुण हैं। उसमे सुन्दर प्रवाह तथा गेय-गति है, जिससे उसकी रुचिर रोचकता बढ़ गई है। वाक्य-विन्यास तथा शब्द-सगुफन भी यथेष्ट और चारु चमत्कृत है।

मूल रचनागत भावो की रक्षा बडी दक्षता के साथ की गई है, हॉ कही कुछ भावो के स्पष्टीकरण मे कुछ न्यूनाधिक्य अवश्यमेव किया गया है, किन्तु वह आवश्यकता तथा उपयुक्तता को ही देख-देख कर, इससे इस न्यूनाधिक्य मे भी अपनी विशेषता है। मूल रचना की आलोचना करना न तो यहाँ उपयुक्त ही है और न आवश्यक ही, क्योकि वह तो अपने गुणो के कारण विश्व-विख्यात है ही। इतना अवश्यमेव मै यहाँ कह सकता हूँ कि इस अनुवाद से मिल्टन और उसकी रचना-कला का पुष्कल परिचय हिन्दी जानने वालो को हो सकेगा। इसके लिये चतुर्वेदी जी हिन्दी-ससार के धन्यवाद के पात्र है।

अब मै श्री० चतुर्वेदी जी की कृति के सम्बन्ध मे अधिक क्या लिखूँ। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस सफल अनुवाद का सुयश और श्रेय आप ही के हिस्से मे था। इससे आपकी साहित्य तथा भाषा सम्बन्धी प्रकाण्ड योग्यता का परिचय भी प्राप्त होता है। निस्सन्देह यह अनुवाद सब प्रकार ,सार्थक और

सराहनीय हुआ है। आशा है कि हिन्दी-ससार मे इसका यथेष्ट आदर होगा। इस मङ्गल-कामना के साथ मै श्री० चतुर्वेदी जी को इस स्तुत्य रचना के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

रामशङ्कर शुक्ल "रसाल" एम० ए०, डी० लिट०
लेकचरर, हिन्दी-विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

१२ बी० बेलीरोड
नया कटरा, प्रयाग

१९-१२ ३८

— —

विषय-सूची



भूल-सुधार

दृष्टि-दोष से 'प्राक्कथन' के प्रथम पृष्ठ की १२वी लाइन मे 'साहित्य' के बजाय 'शिक्षा' और छठे पृष्ठ की १८वी लाइन मे 'सफलता' के स्थान मे 'साफल्यता' हो गया है । इसी प्रकार 'कोमस' की ९८वी लाइन मे 'कुशान' का 'कुषान' और ५५८वी मे 'खग' का 'खड्ग' होना चाहिये। पाठक कृपया सुधार कर पढ़े ।

सप्रेम भेंट

श्रीकृष्णायनमः

प्राक्कथन

अंग्रेजी साहित्य के महाकवियो मे जॉन मिल्टन और विलियम शेक्सपियर अद्वितीय माने गये हैं। मनीषी मिल्टन अपने सद्भाव, पाडित्य तथा धार्मिक विचारो से परिप्लुत रचना के कारण परमाग्रणी और समादरणीय है। महाकवि मिल्टन, राग-भोग और व्यसनमय जीवन को घृणा की दृष्टि से देखता है और ऐसे जीवन को पशु जीवन मानता है। मनीषी मिल्टन सुपठित कवि है। विश्वविद्यालय की एम० ए० डिग्री से विभूषित होकर भी, २५ वर्ष अत्यधिक विद्याध्ययन, अनुशीलन और मनन करने के पश्चात्. मनीषी मिल्टन, दुर्लभ कवि कीर्ति प्रापण क्षेत्र में अवतरण हुआ। मिल्टन के पिता भी एक विद्वान और कोविदो के केन्द्रीभूत सुयोग्य सज्जन थे। उन्होने पुत्र को सगीत और शिक्षा दोनों की ही यथेष्ठ पूर्णता प्राप्त करा दी थी। इस परम्परा और सस्कार का शुद्ध प्रभाव, मनीषी मिल्टन के सदाचारी और पवित्र जीवन का सदा रक्षक बना रहा। मिल्टन छात्रावस्था से ही सयम, नियम और मिताहार से रहते थे। सहपाठी अनर्गल व्यवहारी छात्रो के व्यग शब्दो के पात्र बनते थे। वे इनको 'लेडी आफ दी क्राइस्ट' कहके सम्बोधन करते थे।

मिल्टन ने महाकाव्य, छोटे-छोटे कई काव्य और स्फुट रचनाएँ की हैं, जिनमें 'कोमस' एक विख्यात रचना है जो प्राय:

यूनीवर्सिटियो की बी० ए० परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में रहा करता है।

कोमस स्वांग के रूप मे एक दृश्य-काव्य है, जो अर्ल आफ़ ब्रिजवाटर, जब वेल्स देश के प्रेसीडेण्ट पद पर नियुक्त हुये थे उस शुभ अवसर पर अभिनय द्वारा लोगो को दिखाया और सुनाया गया था।

यह एक ऐसा समय था जब राग-भोग, सुरापान, व्यसन, स्वच्छन्द राजकीय और समृद्ध जीवन के लक्षण माने जाते थे। इस कुप्रथा का तर्कमय खण्डन करने का साहस, अंग्रेजी कवि-कुल-श्रेष्ठ मनीषी मिल्टन ने एक राजसभा के महान उत्सव के समय पर किया था। यह उसके शुद्ध हृदय की प्रबलता और निर्भीकता का द्योतक है।

इङ्गलैण्ड के राजा जेम्स दी फर्स्ट के काल में यह प्रथा व्यवहार रूप मे प्रचलित हो गई थी कि जब कोई राजा या पदवीधारी कोई उत्सव मनाता था या राजा देश के धनी प्रतिष्ठित भद्र जनो को निमन्त्रित करता, तो आवश्यक था कि वह एक स्वाँग का अभिनय भी दिखाने का प्रबन्ध करता। आज से तीन सौ वर्ष पहिले की बात है जब यह 'कोमस' की रचना अर्ल आफ ब्रिज-वाटर के मगलोत्सव के उपलक्ष्य में स्वांग के रूपक मे खेली गयी थी। इसके कर्त्ता-धर्त्ता 'लाज़' थे जो अर्ल के कृपापात्र और उस समय में गायनाचार्य माने जाते थे। 'कोमस' काव्य मे मद्य की निन्दा, दुराचार, व्यसनमय जीवन की दुर्दशा, 'सत' का प्रबल

बल, कामी-जन के छल और इन्द्रजाल का अन्त मे नाश, पुनीत कौमार्य वर्चस्क का तेज, उसकी दैवी सहायता, सयम की प्रशसा, दो बन्धुओ का सम्वाद, ब्रह्मचर्य की महिमा इत्यादि-इत्यादि विषय इस सुन्दर रीति से झलकाये गये हैं जो सयमी, सदाचार-मय जीवन के लिये अमूल्य उपदेश की भाँति सर्वकाल, सर्वदेश और सर्व सभ्य समाज मे आदर और श्रद्धा की दृष्टि से पढ़े व देखे जायँगे। यही काव्य का प्रयोजन भी होता है जो सर्वमगल व कल्याण का विधायक हो। यो तो किसी ने सच कहा है :—

नर की कविता करते नरकी।

मनीषी मिल्टन की रचना अपने क्लिष्ट शब्दो के लिये प्रसिद्ध है। इसके थोडे अपर्याप्त शब्दो में अर्थ प्राचुर्य की विशेषता है जो सुबोध और सुपठित पाठक के ही आनन्द की सामग्री है। मिल्टन की रचना पौराणिक गाथा से सर्वत्र ओत-प्रोत है। यह कवि कभी-कभी नव पौराणिक गढ़न्त करके अपनी अभिरुचि और पात्र को प्रशस्त रूप देने से नही चूकता। इस महाकवि ने परम आस्तिक और ईश्वर मे दृढ विश्वास रखने वाला पवित्र हृदय पाया था जो इसकी विद्या और रचना का जाग्रत चमत्कार है—'विद्या धर्मेण शोभते' ठीक ही कहा भी है। कवि हो, पडित हो, सुपठित, सद्बोध हो, सदाचारी और नैष्ठिक हो तो ऐसे सरस्वती के लाल की रचना पर कौन न निहाल होगा।

मुझे कोमस के एक अश का अनुवाद आरम्भ किये कुछ काल बीत गया था। मैं सरकारी सेवा में युक्तप्रान्त की

तहसीलों मे इनचार्ज होता चक्रमण करता रहा। सेवा समाप्त कर जब मैं 'रिटायर' हो गया, प्रयाग मे रहने लगा—मेरे मित्र ब्रजभापा के विख्यात कवि, गोलोकवासी बाबू जगन्नाथ दास जी रत्नाकर एम० ए० मेरे निवास-स्थान 'नारायण निकुज' बाई का बाग प्रयाग मे मुझ से मिलने आये। वे जब प्रयाग पधारते थे ज़रूर ही मिलने की कृपा करते थे। काव्य-विनोद का आनन्द उनके सङ्ग होता रहा। मैंने 'कोमस' का जो अनुवाद किया था उनको सुनाया। रत्नाकर जी बड़े प्रसन्न हुए। आग्रह-पूर्वक कहने लगे, यह पूर्ण करके अवश्य मुद्रित कराइये। मुझसे वचन ले गये, मुझे विवश यह अनुवाद जैसा जिस रूप मे आज विद्वान् पाठको की सेवा मे उपस्थित है पूर्ण करके उनका वचन शिरोधार्य करना पड़ा। अतः मै उस कविश्रेष्ठ का आभारी हूँ। यदि रत्नाकर जी यह उत्तेजना न देते तो अनेक अन्य अनुवादो और मौलिक कृतियों की तरह यह रचना भी जहाँ की तहाँ रखी रह जाती या गणेश बाहनो की क्षुधा की सामग्री बन गई होती।

अब इसकी भाषा के विषय मे केवल यह निवेदन है कि जब हिन्दी राष्ट्र भाषा हो रही है, तो इसके स्थानिक विभेद पर विचार विच्छेद अब करना उचित न होगा। व्यष्टि का भाव छोड़ समष्टि पर ही दृष्टि देनी होगी। सर्वाङ्गीण बनाने का यही उपाय है। पुराना पचडा छोडना ही पडेगा। प्रान्तीयता या स्थानिक, वैयक्तिक विशेषता की प्रशसा या निन्दा करके समालोचना के

रणक्षेत्र मे कुतर्क सेना साज कर वृथा विचार-विमर्श का सग्राम छेडना समयानुकूल बात न होगी। इसका बुरा प्रभाव अखिल भारती भाषा हिन्दी पर और उसकी प्रगति और प्रचार पर पड़ जायगा।

भारतीय जिह्वा के लिये जैसी आदरणीय, पुनीत "ब्रज भाषा" है उसी तरह रामचरित मानस की "अवधी" भी है, एव 'खड़ी बोली' इत्यादि सभी का सम्मिश्रण जब तक भाषा में न पाया जावेगा वह स्वाभाविक प्रौढता न पा सकेगी। और सस्कृत भाषा सी व्याकरण और व्युत्पत्ति की जजीर से जकडी ऐसी भाषा बन्दी भाषा हो जायगी, स्थानिक शोभा के अतिरिक्त व्यापकता का प्रभाव खो बैठेगी। भारत भारती में शाब्दिक प्रपंच का भेद करके व्यर्थ विचार का विग्रह उपस्थित करना, छेड कर लडाई मोल लेना होगा। कोविदगण इस व्यवहार से बहुत दूर रहते हैं।

मैंने इस बात से बचने के लिये इस अनुवाद मे सभी प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों का समावेश किया है और अर्वाचीन खड़ी बोली की भी प्रधानता रख दी है। 'भाव अनूठो चाहिये, भाषा कोऊ होय' यह स्वर्गवासी नागरी नायक कवि शिरोमणि बा० हरिश्चन्द्र जी का मत है। फिर "मिजाज आनन्द" की बोली मे आज कल की भाषा का स्वरूप देखकर प्राय लोग प्रसन्न ही होते हैं। इसे सुगम सुबोध और सर्वग्राह्य समझते हैं।

श्री बेताब की यह पक्ति इस स्थल पर उद्धृत करना उपयुक्त

होगा—'जुबान गोया मिली-जुली हो'। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी भाषा का यह भेष राष्ट्रीय भाव के प्रचार के कारण उपस्थित हो गया है।

इसलिये सम्मिश्रित भाषा जो राष्ट्रीयता की प्राण मानी जा रही है उसको तिरस्कृत कर, विशुद्ध क्लिष्ट साहित्यिक कलेवर देना मोनो रचना को अप्रिय और कृत्रिम बनाना है। एक विद्वान् मित्र की यह अनुमति मुझे माननी ही पड़ी, इसलिये 'कामुक' का अनुवाद इसी प्रकार उपस्थित किया गया है। प्रकृति-वर्णन तथा गायन मे ब्रजभाषा अनिवार्य है। उसकी मधुरिमा, मृदुलता प्रासाद, एव हृदय-ग्राहिता तथा नैसर्गिक मिठास भाषा के किसी दूसरे स्वरूप में आ नहीं सकते। इसलिये गीतों के अनुवाद मे ब्रज भाषा की शरण ली गई है। तन्त्रीलय समन्वित करने मे दूसरी बोली सर्वथा अयोग्य है यह प्रसिद्ध मत है।

मेधावी अनुवादमर्मज्ञ अनुवादक के श्रम की कठिनता जानते हैं, इसलिये इस विषय मे कुछ भी कहना अनावश्यक होगा। मैंने एक परम क्लिष्ट कवि की रचना को उल्था करने का साहस भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे बोली जाने वाली हिन्दी का समीकरण करके उपस्थित किया है। देखना है साफल्यता कहाँ तक सहवर्तिनी होती है। अपना साहस तो कवि कालिदास के शब्दो मे निम्न भाँति समझूँगा—

"मन्द. कवियश प्रार्थी, गमिष्याम्युप हास्यताम्।
प्रांशु लभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामन।"

महाकवि मनीषी मिल्टन की मूल रचना मे भी दोष-द्रष्टा, कठोर समालोचक, पुनुरुक्ति दोष और व्याकरण की भद्दी भूल पाने मे न चूकेंगे। किन्तु इन लघु त्रुटियो को उसकी पवित्र विचार-धारा एव शुद्ध भावो के निर्मल प्रवाह मे बहती देख, उसके काव्य सौष्टव के आगे वे मुग्धमना होकर इन तुच्छ और कृत्रिम दोषो को नगण्य ही कर देंगे।

उसी भॉति अनेक भाषा-भाषी भारत के 'भारती साहित्य' मे एक भाषा या अनेक भाषा युक्त रचना स्पृहणीय न कि विगर्हित समझी जायगी। बल्कि पचामृत सी सुस्वादु और पवित्र श्रेय वस्तु हो जायगी। ऐसी रचना विशेष रूप से विविध देशवासी जनो को विशेष सन्तोषदायिनी होगी। विशेष कर ऐसे महाकवि के ग्रन्थ के अनुवाद की भाषा मे यह बात परम वाञ्छनीय मानी जायगी।

अनुवाद कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं होता। तथापि मौलिक रचना से इस कार्य मे कही अधिक कठिन परिश्रम करना पड़ता है। चेष्टा यह करनी पड़ती है कि कवि के भाषान्तर मे प्रगट किये भाव उल्था की रचना मे स्पष्टरूप से झलक उठे। कही कही अनुवादक को जोखिम उठा कर, न्यूनाधिक रचना से समावेशित करके, भाव का स्पष्टीकरण भी करना पडता है। अतः कोमस के अनुवाद मे, अनुवाद की यथातथ्यता पर ही दृष्टि रखनी चाहिये। इसीं में 'विशुद्धिः श्यामिकापिवा'' की परीक्षा है। छन्द, रचना, भाषा, बोल, इत्यादि के विचार गौण हैं। अनुवाद

के कठिन कार्य मे अनेक उपद्रव व अड़चनों का सामना करना पड़ता है। सब से बडी बात तो यह होती है कि जिस भाषा मे भाषान्तर करके जो भाव प्रगट किये जाते हैं वे उसी ढाँचे में जब तक ढाल के न सुशोभित किये जा सके तब तक अनुवाद के पठन मे नैसर्गिक आनन्द नहीं मिलता। इसी कारण 'कोमस' का 'कामुक' नाम रखना पडा है जो यथार्थ अनुवाद भी है। जहाँ बिल्कुल ही सम्भावना नही रही वहाँ ज्यो का त्यो कथानक का अंग्रेजी नाम देने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा न था।

आशा है भावदर्शी पाठक व विदुषीगण, भावुक व सरल हृदय से इस ग्रन्थ को पढ़ेगे। यदि कही कोई त्रुटि देखे तो कृपया सूचित करे, जिससे यह अनुवाद द्वितीया वृत्ति मे परिशोधित कर परिपूरित किया जावे, यो तो—महाकवि भवभूति ने स्पष्ट कह दिया है —

"सर्वथा व्यवहर्त्तव्य कुतोह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥"

मैं अपने उन मित्रों को जिनसे किञ्चित भी सहायता इस कार्य मे मिली, अनेक धन्यवाद देता हूँ।

'श्री नारायण निकुज' बाई का बाग़, प्रयाग
१—११—३८

विद्वानों का चरण चचरीक,
चतुर्वेदी रामनारायण मिश्र बी० ए०

कोमस का कथानक



कोमस को स्वाँग का अभिनय कहना चाहिये। कोमस नाटक के कायदे मे नहीं आता है । इसका कथानक यद्यपि सरल है, तथापि पद्यबद्ध काव्य को पढ़ने के लिये गद्य मे उसका खुलासा पढ़ लेने से दिग्दर्शन हो जाता है और पथ-प्रदर्शक की तरह सहायता मिल जाती है। कोमस काव्य तीन प्रधान दृश्यो मे विभक्त है—

१—माया मे फाँसने वाला और माया मे फँसने वाला।

(झारखड जगल)

२—तृष्णा और उससे त्राण।

(कामुक का भवन)

३—विजय। (लडलागढ़)

[प्रथम दृश्य]

झारखण्ड जगल

कामुक स्वांग का अभिनय, रगभूमि मे रक्षक देवदूत के प्रवेश होने पर आरम्भ होता है। देवदूत कहता है कि देवेन्द्र इन्द्र ने मुझे एक भद्र घराने के बालको की रक्षा के लिये भेजा है। उन भद्र महोदय का नाम 'अर्ल आफ ब्रिजवाटर' है। उनके तीन बालक है—दो पुत्र और एक कन्या। पिता की नवीन पद प्रतिष्ठा के उपलक्ष मे जो मगलोत्सव होने वाले हैं—उनमे सम्मिलित होने के लिए वे बालक आ रहे है। कहते है इस अभिनय मे इन बालको ने और 'लाज' ने स्वय बन कर पात्रो का कार्य किया था। उनका पथ एक जगल मे होकर जाता है। बालकों को विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

इस जगल मे बडा भयङ्कर जादूगर, जिसका नाम 'कामुक' है, रहता है। 'कामुक' 'द्वैनाशी' और 'सुरसा' का पुत्र है। अपने जादू के ज़ोर से स्त्रियो, पुरुषो को जो उसके चक्र मे फँस जाते हैं, मनुष्य से पशु बना देता है।

देवदूत तब अपना रूप बदल कर इस वश के सेवक का भेष बना लेता है, और कामुक का पास मे आना सुनकर अन्तर्ध्यान हो जाता है।

दल के सहित 'कामुक' प्रवेश करता है, और अपने साथियों को सम्बोधन करता है कि रात्रि आ गई सब लोग मद्यपान धूम-धाम से आरम्भ करो। उसका दल उछल-कूद कर नाचने लगता

है। थोड़ी ही देर मे जादू-विद्या के बल से सती कुमारी की पद-ध्वनि समीप मे पहुँची जानकर वह अपने दल का नृत्य कोलाहल बन्द कर देता है। सब दल को जगल मे भगाकर छल रचना का प्रपच आरम्भ करता है, जिससे वह अज्ञान अतिथि कामुक को देखकर निर्दोष किसान समझे। ज्यो ही भामिनी प्रवेश करती है कामुक हट जाता है और छिप कर उसकी दशा देखता है और बड़े ध्यान से उसका वचन सुनता है।

भामिनी प्रवेश करने पर स्वगत कहती है कि दोनो भाइयो के साथ वह जगल मे यात्रा कर रही थी। चलते-चलते भामिनी थक गई। भाइयो ने कहा कि वृक्ष की छाया मे बैठ कर सुसता लो, तब तक हम लोग जगल से जल, फल तलाश करके लाते है, तुम कुछ जल-पान कर लो। वे जा कर फिर नहीं लौट पाये। रात हो चली। भामिनी को भय सवार हुआ कि भाई लोग जगल मे जाकर खो गये। वह डरी, पर अतरात्मा, दृढ विश्वास, आशा और ब्रह्मचर्य की दुहाई देकर उसने यह अनुभव किया कि उसकी रक्षा स्वय भगवान कर रहे हैं। ठीक इसी समय भामिनी को घोर अधकार के छाये बादल से आकाश में प्रकाश की झलक दीख पडी। उसके व्यग्र हृदय को कुछ आशा हुई और वह एक सुन्दर गीत प्रतिध्वनि को सम्बोधन कर गाने लगी, जिससे भाई लोग उस स्वर को सुनकर समीप पहुँच जावे।

यह गायन भाइयो को तो नहीं, पर कामुक को बुला बैठा।

कामुक एक गडरिये का रूप धर कर आ गया। कामुक सुरीला गान सुनकर मुग्ध हो गया और अपने जादू के करतब और बल से भामिनी को अपनी भार्या बनाने का दृढ निश्चय कर बैठा। भामिनी से भाषण छेडा। भामिनी अपनी कठिनाई की कथा सुनाने लगी। धूर्त्त कामुक ने सुनकर उससे कहा कि मैने आपके भाइयो को देखा है और प्रतिज्ञा करता हूँ कि वह जहाँ होंगे ढूँढ़ कर मिला दूगा। इस समय मुझ दीन गडरिये की मडैया मे चलकर आतिथ्य स्वीकार करे। वह स्वीकार करती है।

जब कामुक और भामिनी रगमच से बाहर चले जाते हैं तब दोनो भाई प्रवेश करते हैं और अपनी बहिन को उस अधेरे जगल मे ढूँढ़ते फिरते हैं। दोनो भाइयो मे परस्पर सवाद होता है। छोटा भाई अपनी बहिन के सुरक्षित न रहने की दशा मे जो भय और उपद्रव हो सकते हैं, कातर होकर, उनका बखान करता है, पर उन भय और आशङ्काओ को बडा भाई अपने वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रसगों द्वारा दबाना चाहता है। दोनों भाइयो का यह सम्वाद सारी रचना की प्रधान कुजी है और बड़ा प्रभावपूर्ण युक्तियुक्त तर्क है जो ब्रह्मचर्य की रक्षक सत्ता का द्योतक है।

भाइयो के कथनोपकथन को एक दूर की आवाज ने भग कर दिया। तब देवदूत एक गूजर के रूप मे प्रवेश करता है। उसका यह रूप देख 'स्थिर सीस' नामधारी पिता का भृत्य उसे समझ कर दोनो बन्धु उसका स्वागत करते हैं। यह भृत्य भवानी भामिनी के विषय मे अति उत्कण्ठा से जिज्ञासा करता

है। जब उससे यह कहा गया कि वह यहाँ जगल से खो गई, तब इसका मन बहुत अशान्त हुआ। वह भयभीत भाइयो को जादूगर कामुक की वहाँ पर स्थिति और उसकी जादू की शक्ति की व्यवस्था सुनाने लगा। तत्पश्चात् यह भृत्य उन कुमारो से कहने लगा कि मैन तुम्हारी भगिनी का गायन सुना था। उसका शब्द सुनकर जब पते पर पहुँचा तो देखा कि छद्म रूप धारी कामुक ने भामिनी को छल लिया है। तब तुम दोनो की खोज मे तुरन्त मैं दौड पडा। और तुम लोगो के पास यहाँ आ पहुँचा।

यह सुनते ही भाइयो का क्रोध भभक उठा और जादूगर पर आक्रमण करने के लिये वे दौड़ पड़े। किन्तु उस साथी ने उन्हे रोक के समझाया कि बिना 'प्रबल जादू' की शक्ति पास मे लिये उस जादूगर के जादू पर जीत पाना असम्भव है। यह कह कर 'हियमणि' नाम की एक जादू की रूखड़ी उसने उन्हे दे दी और बोला कि 'लो यह जड़ी सारे जादू से तुमको बचावेगी। जाओ जादूगर 'कामुक' पर और उसके समग्र दल पर हमला करो, जादू की घूँट भरे उसके प्याले को तोड़ डालो और उसकी जादू की छडी छीन लो। तब वह जादूगर शक्तिहीन हो जायगा। तुम्हारी उस पर विजय हो जावेगी।'

[दूसरा दृश्य]

कामुक का महल

दूसरे दृश्य में बड़े ठाठ से सजे-सजाये महल का भीतरी निदर्शन है जहाँ कामुक और उसके साथी एकत्रित होकर भोजन

डकार रहे हैं। भामिनी जादू से जकडी एक कुर्सी पर बैठी है। 'कामुक' उस देवी को मद्य का गिलास अर्पण करता है। इसमें जादू की वह घूँट भरी हुई है कि जो कहीं वह इसे पी जावे तो उसका स्वभाव ही बदल जावे। देवी घृणापूर्वक मद्यचषक अस्वीकार करती है और उठ कर खडी होने का प्रयत्न करती है। पर जादूगर के जादू से जकडी होने के कारण वह विवश है। इस अवसर पर 'कामुक' और 'कुमारी' के बीच जो बात-चीत होती है वह इस mask (स्वांग) मे कही गई प्रधान शिक्षा की प्रमुख वचनावली है। 'कामुक' मन की कामना और वासनाओ मे प्रवृत्ति और आसक्ति की परिपूर्त्ति करने मे निर्दोषिता, आवश्यकता और स्वत्व की परिपुष्टि का विस्तृत और जोरदार तर्क सुनाता है। कुमारी सच्चरित्र स्त्री की भाँति उसके पाप वचनो को धार्मिक घृणा व क्रोधमयी दृष्टि कर उसके समग्र तर्क का खण्डन करती है और 'सत्त' की दैवी सुन्दरता का पक्ष परिपोषण करती है। कामुक विवाद मे परास्त होकर भयभीत होता है और जादू का प्याला कुमारी के ओठो मे प्रयुक्त करना चाहता है।

उसी समय दोनो भाई तलवार खींचे हुए घुस पडते हैं, कामुक के कर से प्याला छीन कर जमीन पर फेंक देते हैं, प्याला चूर-चूर हो जाता है। उसके सारे दल को मार भगा देते हैं। तब देवदूत प्रवेश करके जादू की छड़ी न छीनने के कारण कार्य अधूरा रह गया इसलिये उनकी भर्त्सना करता है। जादू

की छड़ी बिना छीने 'भामिनी' का जादू नही छूट सकता। इसी लिए वह जादू चढ़ी कुर्सी पर बैठी रह गई। उसी समय उसको यह स्मरण आया कि इस स्थान के निकट, जहाँ पर वे मौजूद हैं, एक परम सुन्दरी विद्याधरी रहती है। उसका नाम "सुवर्णा" है। वह सुवर्णा नाम नदी की अधिष्ठात्री देवी है। यह कुमारी कन्याओ की विशेष रूप से रक्षा करती है। जादू की जकड़ छुडा देती है और अग अकड़ाने वाले जादू का प्रभाव हर लेती है।

देवदूत ऊँचे स्वर से भजन गाकर "शुभ्रा सुवर्णा" को सहायता के लिये आवाहन करता है। भजन समाप्त होने पर 'सुवर्णा' जल-धारा से ऊँची उठती है और जल देवियो को सग लिये प्रत्युत्तर में गान सुनाती है। देवदूत देवी की शरण ग्रहण कर अपनी मनोकामना तथा अभिलाषा और आवाहन का अभिप्राय निवेदन करता है। तब सुवर्णा देवी कुमारी के स्तन, अँगुलियो तथा होठो पर जल सिंचन करके जादू का प्रभाव नष्ट कर देती है। फिर अपने पवित्र प्रक्षालन, शीतल एव आर्द्र पाणि का स्पर्श जादू चढ़ी कुर्सी पर फेर कर सब जादू उतार देती है, देवी तब अन्तर्ध्यान हो जाती है, कुमारी भामिनी कुर्सी से उठ बैठती है। देवदूत सुवर्णा देवी की स्तुति कीर्तन करता है और कुमारी भामिनो को इस अभिशप्त स्थान के छोड़ने तथा अपने संग पिता के महल में भाग चलने का परामर्श देता है।

[तीसरा दृश्य]

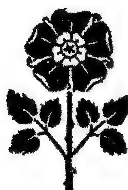
लडलागढ़ और प्रेसीडेण्ट का महल

भामिनी के पूज्य पिता की पद प्रतिष्ठा प्राप्त होने के उपलक्ष्य मे मगलोत्सव और शुभ शगुन की धूम-धाम मनाई जा रही है। देहाती कथकों का दल जुट रहा है। कुमारी भामिनी और दोनो भाइयो को देवदूत उनके माता-पिता की सेवा में उपस्थित करके कहता है कि भगवान ने कुमारों की और कुमारी के यौवन, आस्था और सत्य की भली भाँति परीक्षा कर ली है और तब वहाँ—

To triumph in victorious dance,
Over sensual folly and intemperance.

क लिये भेज दिया है।

नाच-रग के समाप्त होने पर देवदूत अपना अंतिम वचन सुना कर यह समझाता है कि उसका अनुष्ठान निर्विघ्न विजय के साथ समाप्त हो गया और वह अपने सुखधाम मे जो आकाश के ऊपर है, वापस जाता है।




कामुक

पात्र

१—रक्षक देवदूत, जो पीछे से स्थिरशीश के भेष में प्रकट होता है

२—कामुक और उसका दुष्टदल

३—कुमारी

४—बड़ा भाई

५—छोटा भाई

६—सुवर्णा, जलदेवी (विद्याधरी)





प्रथम दृश्य—झारखंड जंगल

[रक्षक देवदूत रङ्गमञ्च पर आता है]

रक्षक देवदूत :—

चमक रही तारकों से देहली,
सुरेश के वैजयन्त की है;
भवन हमारा बना है सन्मुख,
सुछवि समुज्वल दिगन्त की है।
पवित्र तैजस वे वायुरूपी,
विशुद्ध आत्मा अजर, अमर, वर,
स्वपिण्ड मण्डल में वास करती,
प्रकाशमय स्वच्छ शान्त नभ पर।

ये पुण्य लावण्य धाम सुखकर,
यही है स्वर्लोक देवता का,
भुवन है 'भूतल' इसी के नीचे,
उड़े जहाँ पाप की पताका।
है मर्त्य इस मन्द थल मे बसता,
जो धूम-धक्कड से भर रहा है,
चढ़ी है तृष्णा, हृदय मे चिन्ता,
औ मोह-ममता मे मर रहा है।
पड़ा है बन्धन मे दुख उठाता,
पशू सा बाड़े मे धँस रहा है,
प्रतप्त परिताप पाप-जीवन,
जिला रहा—भ्रम मे फँस रहा है।
न हाय इतना भी ज्ञान इसको,
कि जीव भौतिक वियोग पाकर,
है प्राप्त करता स्वधर्म के बल,
'परम पद' स्थान तप उठा कर।
ये भोग-इन्द्री मे मान कर सुख,
उतप्त पापों से प्रान अपना,
बनाके जीवन को क्लेश का घर,
है देखता, इसमें सुख का सपना।

है सर्वथा फिर भी यह असम्भव,
कि सृष्टि सूनी हो कार्म्मिको से,
अवश्य ही हैं कही न कोई,
धरा न रीती है धार्म्मिकों से।

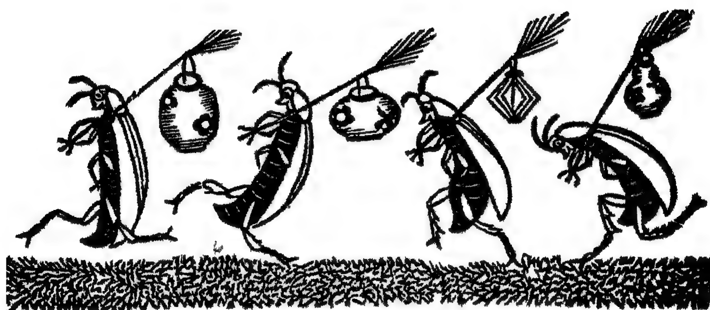
जो कर्म, तप, धर्म विधि से करते,
वे भावना ये हृदय में धरते,
कि पूर्ण-अधिकार-पात्र बन के,
उपाय सद्गति का प्राप्त करते।

वही उचित योग्य पात्र प्राणी,
कनक की कुञ्जी पै हाथ धरते,
अनन्तता का महल जो खोलै,
औ लब्ध 'तत्पद' सविधि वे करते। २०

त्रिलोक-पूजित उसी पुरुष से,
सँदेश कहने यहाँ मैं आया,
उतर के स्वर्लोक से अवनि पर,
पवन मे जिसकी है पाप-छाया।

उन्ही के कल्याण-हित की चिन्ता,
मुझे यहाँ खींच करके लाई,
जो पाप-प्रीडित इस पिंड मे,
मैं पड़ा प्रयोजन से हूँ दिखाई।

कभी न परिधान दिव्य अपना,
मलिन बनाता न थी ये इच्छा,
न पाप की तीव्र वाष्प लगती,
है किन्तु करनी किसी की रच्छा।



२

प्रथम मे विश्वाधिपति 'शनिश्चर',
किये गये जब स्वपद से विच्युत ;
तो विश्व अधिकार तीन सुत में,
किया गया था सक्रम विभाजित।
स्वर इन्द्र, पाताल यम ने पाया,
मगर जो था भाग मध्य तल पर ,
वरुण बने सार्वभौम, पाकर
विशाल साम्राज्य द्वीप जल पर।
अनेक लौनोद ह्रद सरोवर नदी
परीवाह स्रोत निर्झर ,
हुए जलाशय के चक्रवर्ती,
प्रधान शास्ता, त्रिशूल कर धर।

समुद्र में थी जो द्वीप माला,
अमूल्य मणि सी जडी समुज्वल;
मिली, बिना जिनके वक्ष सागर,
दिखाता था शून्य और ओझल।

पृथक विभागो मे खण्ड करके,
प्रभुत्व देवो का कर प्रतिष्ठित;
बनाया आधीन उनको अपना,
स्वतन्त्र शासन किया व्यवस्थित।

त्रिशूल-चालन की राज-शक्ती,
स्वतन्त्रता दी प्रयोग गति की,
धरै मुकुट शीश नील मणि का,
हुई अनुज्ञा ये अम्बुपति की।

परन्तु जो द्वीप सबसे उत्तम,
समग्र सागर में था निराला;
स्वनीलकच देवता गणों मे,
किया विभाजित औ स्थिति सम्हाला।

दिया कुल-श्रेष्ठ भद्रजन को,
समझ के श्रद्धेय वीर प्रतिबल;
ढुलकते रवि के प्रत्यक्ष सम्मुख,
जो देश 'वेलस' का था धरातल।

ये शस्त्र बल मत्त "वेल्स" वासी,
थे धृष्ट प्राचीन जाति के जन ;
दबाके इनको उभय कला से,
प्रतीति भय से करे सुशासन।
पिता का अधिपत्य देख करके,
नवीन धृत-दण्ड की प्रतिष्ठा ;
हो मग्न उत्सव को दृग से देखे,
जनक का स्वागत, प्रजा की निष्ठा।
पिता के सन्तान आ रहे हैं
यहाँ, भरे सत्स्वभाव के हैं ;
पले हैं राजन्य रीति-क्रम से,
सुशील कोमल स्वभाव के हैं।
परन्तु पथ मे पडेगा उनके,
कुटिल विकट वन गहन अखण्ड ,
अकट महीरुह हिलोर शाखा,
विटप प्रकम्पित पवन प्रचण्ड।
भटक के सभ्रान्त पान्थ जिनमे,
है झेलते भय विपद से खेचड़ ,
खटक है कोमल किशोर बालक,
सहैं न दुख पन्थ में यहाँ पड़।

सुरेश की पा के शीघ्र आज्ञा,
मैं आ गया चट ये ले 'कमान';
रहूँगा चौकस, करूँगा रक्षा,
मिटा के औचट बचाऊँ प्रान।
कहूँ जो आगे वो ध्यान दे के,
सुने उसे सब हृदय लगा कर,
समझ सकेंगे तो तत्व सारा,
जो ध्यान श्रद्धा से दे मिला कर।
हुआ न गायन कहीं विषय यह,
न कथ सका कवि, कोई गुनी,
सभा, महल, कुञ्ज, नारि, नर ने,
नहीं किसी ने कहीं सुनी।



द्वैनाशी ने वहा पैठ कर,
देखा 'सुरसा' का अधिकार,
जग मे उसे कौन नहि जानै,
सूर्य सुता माया अवतार।

जो उसके जादू का प्याला,
धोखे मे पी जाता था,
खोकर असली रूप रेंगता,
शूकर की गति पाता था।

नव यौवन, घुँघराली अलके,
फूलो की सुघरायी पाय;
'द्वैनाशी' की यह छवि-सुषमा,
गई दानवी के मन भाय। ७०

कर प्रसग, प्रस्थान पूर्व ही,
सुरसा ने सुत जन्माया,
रूप अनूप पिता का,
गुन सब जननी का सुत ने पाया।

माता ने लालन-पालन कर,
सुतको 'कामुक' नाम दिया;
युवा हुआ उन्नति कर क्रम से,
तब उसने अंधेर किया।

स्पेन फ्रांस आदिक देशो मे,
लगा घूमने भट भारी,
अब इस अशुभ, नष्ट जगल का,
बन बैठा है अधिकारी।

छाया सघन श्याम कुञ्जो मे,
हो उन्मत्त विहार करे,
इन्द्रजाल छल-रचना रच कर,
जननी को भी मात करे।

भानु-ताप से तृषा मूर्छित,
श्रान्त पथिक जो आ जाये,
स्फटिक पात्र मे उज्ज्वल मदिरा,
अर्पित कर सन्मुख लाये। ८०

बहुतेरे अविवेक तृषा मे,
मूरख नर पी लेते थे,
किन्तु और वे जो भ्रमवश भी,
स्वाद जीभ को देते थे।

गले उतरते एक घूँट के,
सर्वस हानि उठाते थे;
देव सदृश छवि कान्ति सुमुख की,
शोभा हाय ! गँवाते थे।

भालू, सुअर, भेड़िया, चीता,
या मुख बकरी, नाहर सा,
हो जाता मुख विविध पशु सा,
लेकिन धड़ रहता नर सा।

इस स्वरूप का ज्ञान न उनको,
रहै न कुछ दुर्गति का ध्यान,
सुन्दर समझ पशू मुख अपना,
उछलैं कूदैं कर अभिमान।

मद्यप जन की बुरी दशा है,
रहे न बुद्धि धर्म का अंश;
शत्रु-मित्र का भेद न रखते,
भूलैं मीत जन्म-भू, वंश।

शठ शूकर से इन्द्री का सुख,
पाने को बनते मद अंध,
कष्ट! भोग-बाड़े में घँस के,
लोट, टटोलैं सुख-सम्बन्ध।

इस पथ से देवेश इन्द्र का,
कृपा-पात्र जब आता है;
जोखिम भरे हुये जंगल में,
धस इस मग से जाता है।

बन करके यात्रा में सहचर,
करतब मैं दिखलाता हूँ,
टूट स्वर्ग के तारे सा मैं,
सकुशल पार लगाता हूँ।
इन्द्र धनुष ताना से बीना,
दैवी जामा दूर करूं,
इस कुल के सेवक कृशान सा,
वस्त्र पहन कर भेष धरू।

जिसके मुरली की मजुल ध्वनि,
सुरस गीत का सुन्दर गान;
बन, अन्धर को धीमा कर दे,
कम्पित जगल को थिर स्थान।

अति विश्वासपात्र इस कुल के,
'शैल-रखा' सा रूप बनाय;
निकट रहूँ जिससे औसर पर,
बन सहाय रच सकू उपाय।

किन्तु घृणित चरणो का चाला,
कानों मे सुन पड़ता है,
अब अदृश्य बन करके देखू—
आगे क्या गुल खिलता है।

❀ ❀ ❀

४

[देवदूत रगमंच छोड कर जाता है । कामुक का सदल प्रवेश—कामुक एक कर में जादू की छड़ी, दूसरे कर में काँच का ग्लास लिये अनेक भयकर रूप धारी राक्षसों के झुण्ड के साथ में, जिनके केवल मुख जगली पशु सरीखे, पर डीलडौल में स्त्री पुरुष की धज, चमकीले वस्त्र पहने, सब हाथों में पलीता जलाये, हुल्लड़ और घोर कोलाहल करते हैं ।]

कामुकः—

नखत शुक्र, जेहि निरखि, मेषपति घेरत खरिकन ,
नभ मस्तक उगि रह्यो, तेज पुंजित तारागन ।
कनक चक्र रथ हांकि, प्रखर कर बोरत जल रवि ,
अतल धार धसि चल्यो, सलिल की लखि ढालू छवि ।
धुधित ध्रुव के बीच, मरीची कला विभासत ;
उर्द्ध मडलाकार अस्तरवि, किरन प्रकासत ।

नव बानक सो बनो, रमत दोउ दिसि मिहिरारो,
प्राची भौन बिहार, प्रतीची सदन सिधारो।
आयो सुन्दर समय, सुखद रजनी को सोहन,
भये चराचर सुखी, सृष्टि नाचति प्रसन्न मन।
यह बिलास, सुख, भोग, उठावन को सुभ अवसर,
होत निशा मे प्रणाद, उठत सम्पीती को स्वर।
नृत्य रास की धूम, क्षीव, पदगति इठलानी,
नाचहि जन उन्मत्त, ठुमकि थिरकनि मनमानी।
कच सज, गूँथे सूत्र, सुमन पाटल सो कुन्तल,
पुष्प बिन्दु, मकरन्द, सुगन्धित गमकत परिमल।
सुमन सुरा स योग देत, सौरभ, सौगुन बल,
सुरा भरति सम्पुटित सुमन सो सीकर उज्ज्वल।
व्रत, दृढ़ता, तप, नेम, सयन गृह माहि सिधारे,
चिन्तित ह्वै नतग्रीव, भये उपदेश, किनारे।
हठी सयानप और बडकपन की गरुआई,
गुरु के गरिमा वचन, तिनहिँ दृग नींद समाई।
नभ मण्डल मे घूमि, नखत 'गति नाद' जगावै,
ह्वै चौकस नक्षत्र रैन उगि, समय जतावै।
घूमै द्रुत गति चक्र, मास, सम्वत, बिलगावै;
तेजस तन, हम, सदल, सोई अनुकरण उठावै।
सकल सुहाने, सिन्धु, कलानिधि नेह लुभाने,
मीन-झुंड-सँग नाचि, भ्रमहि उमड़े अकुलाने।

सैकत कपिल कछार, शिला, निर्जन पहरिन पै ;
करहि अप्सरा केलि, किन्नरी थिरकै तिन पै।
लहरन निकट विराजि सरित, पूरित सोतन मे ;
विहरहि सज्जित सुमन, मुदित वन देवी बन मे ।
करहि केलि कल्लोल, जागि उल्लास पुरावै ,
सोए नर निशि माहि तजै सुख, परि, मुख बावै ।
निदिया बैरिनि रैन, न इनको नाता कोई ,
रैन देति सुख चैन, नीद सोई सुख खोई।
जीवन की सुख मूरि रैन, जागरन करावै ,
मन्मथ मन को मथै, प्रेम अङ्कुर उपजावै ।
लोक लाज भय मरे, मनुज मन में अनखावै ;
क्यू न भोग आनन्द, निशा में हिय हरखावै ।
अन्धकार निसि घोर, हमारो कहा बिगारै ;
यह तो दिवस प्रकास, पाप की थाप निकारै ।
अथयो साखी भानु, सबै इच्छित रस पीजै ;
हिल मिलि सब आरम्भ क्रिया पूजन विधि कीजै ।
कृष्ण वसन परिधान करति तू काली देवी !
नक्त कुतूहल प्रिये, धन्य ! तेरे अनुसेवी ।
दीप दान जग करै, रात आधी जब जावै ;
जोरि जोति की ज्वाल, गुप्त तुव भेट चढ़ावै ।
कला-परे अप्रतिम, देति नहि दरस भवानी !
घोर अमासी घटा, विश्व ग्रासति तम तानी ।

उगलति तब तमतोम, नरक सी घोर अन्धेरी,
करति तमोमय विश्व, एक तामस की ढेरी।
आवनूस के मच बैठि, "हिय कटि" सग राजै,
घन से चपल तुरग, आपके निरखत भाजै।
नेकु दया कर रमहु, लेहु यह पूजन सारी,
जब लौं माता पूर्न होय, विधि क्रिया हमारी।
अपनैयो हे अम्ब! सकल हम, निशा पुजारी!
चूक न नेकहु परै देखु, कहुँ, जाय अगारी।
हिन्द शैल पै कुटी डारि चौकस रखवारी,
छिद्र झरोखन तकति, रैन की क्रिया हमारी।
पौ फाटत ही झाकि, भानु सो ऊषा प्यारी,
कहै न चुगली खाय, गुप्त, सब बात हमारी।
आवहु हिलि मिलि सबै, जोरि कर ठुमकै नाचै,
अचला चरन चलाय, रास मडल रुचि राचै।

(सब नाचते हैं)

कामुक—अपने दल से कहता है:—

छुप जावो, भागो जल्दी से, कटक झाड़ी मे तरु ओट;
निरखि हमारे दल की गिनती, डरै न वाला, समझे खोट।
इसी भूमि के निकट कहीं से, गति, पुनीत यह बढ़ती है,
किसी कुमारी के पद की ध्वनि, कानो मे सुन पड़ती है।
अज्ञत वाला निश्चय कोई, रैन समय वन में भटकी,
(निज गुन से मैं जान रहा हूँ, यही बात मन मे खटकी)।

इन्द्र जाल, छल बल, रचना रच, मनहरनी माया फैलाय,
छेरी दल सुरसा माता सा, प्रगट चराऊँ उसे दिखाय।
चकचौंधी आखै कर अन्धी, तव तिलस्म दिखालाऊँ मौन;
फिर जादू की तीखी पुडिया, फूँक भरूँ मैं सीरी पौन।
निर्जन थली देख धज मेरी, विस्मय मन उपजावैगी;
चकित, डरी भ्रम भरी, कुमारी भागैगी, भय खावैगी।
नीति रीति विपरीत कर्म यह, चाल और कुछ चलूँ विचार,
मित्र भाव का दे आश्वासन, नम्र वचन का कर व्यवहार।
शिष्टाचार, युक्ति का लासा, लपटा कर मृदु वचन कहू;
अपने को इस विधि दिखलाऊ, मानो मैं निर्लेप रहूँ।
तब साधारन रहन-सहन का, मैं गँवार सा रूप बनाय;
त्रासित मन अबला का मोहूँ, सम्भाषण का जाल बिछाय।
यदि उसके दृग मे जादू की, फूँक जाय इक बार समाय;
तब किसान का रूप बनाकर, प्रगटूँगा सन्मुख मे जाय।
उपज खेत के धन्धे मे लग, करे गृहस्थी मगन रहे,
दिन डूबे भी कृश उद्यम कर, जो बस्ती की डगर गहे।
किन्तु सुन्दरी यह आ पहुँची, मेरी गति मति थकती है,
यदि सम्भव हो सुनके देखूँ, यह क्या लीला रचती है।



५

[कुमारी का प्रवेश]

कुमारी (स्वगत)—

दूर पास के ज्ञान प्रदायक, यदि सच्चे ये कर्ण अधार ,
इसी मढे का शब्द सुन पडा, उठी यहीं से घोर पुकार ।
जिसको सुनकर मै समझी थी, पान गोष्ठी का सघोष ;
धूमधाम से सुरा भोज का, सामाजिक उत्सव निर्दोष ।
रोम रजनी तान सुरीली, मुरली का मजुल वादन ,
टोली रचकर गान वाद्य मे, मौज उडाते खेतिहर जन ।
खेत उपज से हरे भरे मन, पशु पौहों से हो भरपूर ,
गाते यश पर्जन्य देव का, सुख से कृषक मद्य मे चूर ।
चषक चढाके करै रतजगा, मन्नत पूरैं गाय बजाय ,
इष्ट देव को धन्यवाद दे, अविधि कर्म अनरीति चलाय ।

नाचै पी-पी सुराजाल्प ये, इन्ही असभ्यो में हिल कर,
क्या उपजाऊँ घृणा हृदय मे, आशा क्या इनसे मिलकर ?
किन्तु खेद ! है नहीं ठिकाना, कौन ठौर अब जाऊँ मै,
गुम्फित बन के कुटिल पथ मे, कब तक पद भटकाऊँ मै।
चलते-चलते दीरघ पथ मे, देख श्रान्त मेरी गति मन्द,
पावन छाया मे सुसता ले, बन्धु युगल बोले सानन्द।
छायाशील अतिथि सत्कारी, लता गुल्म मडित तरुमाल,
जो कुछ वस्तु क्षुधा सन्तोषी, हो प्रसन्न दे सकै निकाल।
बैरादिक फल जो मिल जावै, लाने का मन निश्चय ठान;
झरबेरी के उधर ओट मे पहुँच, हो गये अन्तर्ध्यान।
छोड अकेली बन मे मुझको, तब प्रदोष बेला आई;
भिक्षुक ज्यों दाता के पीछे, हो जाता है अनुयायी।
रवि-रथ की पहिया के पीछे, गोधूली सन्ध्या छाई;
युगल बन्धु वे मेरे साथी, बिछुड़ गये दोनो भाई!
कहाँ गये अब तक नहिं पलटे, चिन्ता चित्त डुलाती है,
कुशल कामना की उत्कण्ठा, भ्रम सशय उपजाती है।
कहीं दूर बन मे जा भटके, घबराती हूँ, बुरी दशा
रह रह कर हो जाती मेरी, इस चिन्ता का चढा नशा।
बन्धु हमारे हरकर तू क्यों, छुपा रही घातिनी निशा ?
अँधाधुन्ध है सूझ न पड़ता, तम छाया है चतुर्दिशा।
दे दे स्नेह अनन्त सृष्टि ने, दीपक नभ में बाले थे;
भूले भटके थके पथिक के, मारग के उजियाले थे।

नभ दीपक तारो की द्युति पर, क्यू तमतोम पसार रही,
री ! अपहारिनि रैन बता दे, क्यू यह घात विचार रही !
यही ठौर पहिले थी अब भी, अनुभव यही बताता है,
मत्त निनाद यहां से उठकर, कानो पडा सुनाता है।
यह रहस्य है कठिन ! किन्तु, मैं अब न यहा कुछ सुनती हूँ,
अन्धकार विस्तार समावृत, हर प्रकार अब लखती हूँ।

इस स्थिति मे बहम हजारो, उठते हैं करते ही याद,
मरु बीहड जल थल में प्राय आते एक-एक के बाद।
भयावनी सूरत भीषण वे, परछाँही इङ्गित करती,
मानो नाम ले रहा कोई, पवन जीभ बन स्वर भरती।
हिल-हिल कर वृक्षो की शाखा, सैन चलाती भय छातीं,
तरह-तरह के दृश्य दिखा के, डर भय मन मे उपजातीं।

इस प्रकार की वृथा कल्पना, मति विभ्रम कर सकती है;
धर्म-प्राण प्राणी के मन को, हल चल करते डरती है।

अष्ट प्रहर जिसका है सगी, प्रबल पक्षपोषक बलवीर,
जिसे 'विवेक' कहा करते है, रक्षा कर हरता है पीर।

"स्वागत करति प्रणाम, नमत पद-पकज सेवी !
शुक्ल पक्ष विश्वास ! पाणिसित आशा देवी !
देवदूत सी, स्वर्ण पक्ष, मडरावत डोलत,
नमो अपांसुल 'सत्त' ! रूप, शुचि, कौमारी व्रत !

सत्त लखति प्रत्यत्त, धरति निश्चय यह उर,
परम भद्र भगवान ! देव सर्वोत्तम, ईश्वर।
दण्ड देन के हेतु, वस्तु निकृष्ट, विरच कर,
राखत अनुचर सदृश, सदा तिनको निज वश कर।
सोई दीन दयालु, समय पर, दया दिखावहिं,
रत्ता-पाणि पसार, प्रतिष्ठा, प्राण बचावहिं।"

❀ ❀ ❀

क्या धोखा हो गया मुझे या, थी काली बदली छाई;
जिसने कुहू रैन मे आके, रजत किनारी बिखराई।
मेरी भूल न थी—यह बदली, रेखा रजत दिखाती हैं;
सघन कुज, शाद्वल मे अपना, जोति विम्ब झलकाती है।
मै हूँ श्रान्त, क्लान्त मन मेरा, टेर नही मैं कर सकती;
यथा-शक्य श्रोतव्य स्वरो मे, गिरा, उद्गिरण हू करती।
शक्ति हृदय की पनप रही है, हमे दे रही आश्वासन,
भास रहा है वे समीप है, कहता है यह मेरा मन।

❀ ❀ ❀

गीत

अरी ! प्रतिध्वनि प्यारी ! सुनियो विनती एकु हमारी !
देवि ! द्रवहु ! होउ जहा विराजी ! क्वारी सरन, तिहारी !
नैनन अलख, पवन गोलक मे, बसति व्योम-ध्वनि प्यारी ?
अथवा, मन्द 'मन्द्र' तट विचरति, लहरति जहँ हरियारी !

किमि राजति सुमनन सौरभ मे, गमकति जहाँ तराई,
  चूकी प्रेम-वियोगिनि श्यामा, करुण कलाप सुनाई।
निज 'नृकेश' सी प्रिय जुग मूरति, यदि देखी सुकुमारी!
  क्यू न बतावति, करति निहोरे, स्वर कल कण्ठ निकारी।
यदि रीझी लखि छवि भैयन की, तन मन करि बलिहारी,
  बोलु दुराय दूर कित राखे, कजन कुंज मँझारी?
गगन सुते! आलाप दुलारी! यह वियोग दुख भारी,
  बिछुरी बन्धु विपिन हौ भटकति, ढारत दृग दुखवारी।२७०
व्यापहु दूर दूर नभ छावहु, समता सौख्य बढ़ावहु,
  गुंजन स्वर दै पिंड नाद मे, नभ गायन दोहरावहु।
    होहु जहाँ तुम गूँज पियारी!
      सुनियो विनती नेकु हमारी!!



६

कामुक (स्वगत)—

दिव्य मोहनी वे प्रमान सुर, बोल रही जैसे सुख ऐन ;
पंचतत्व की भौतिक रचना, काढ़ सके नहिं ऐसे बैन ।
निश्चय इस सौदर्यमयी के, शुद्ध हृदय में धर्म निवास ,
गद्गद् कंठ सरस सुर इसके, गुप्त पुनीती करे प्रकाश ।
सूनी रजनी की 'गुम्बज' में, शान्ति-शकुनि के पंखों पर ;
स्पर्श परम कोमल शब्दो का, करता है मन विह्वलतर ।
सुख सम्बिद्ध 'कुहू' कोकिल भी, रोम राजि विकसाती है ;
स्वर निपात आलाप थाप पर, निर्जनता मुसकाती है ।
'तीन सुरीन' मातु सुरसा का, सग सुना प्राय: गायन ,
सुमन सुवासित देवि 'नदीसा', निकट सुहाना मन भायन ।

सुरस वनस्पति तीव्र औषधी, चुनने जब वे जाती थीं,
गाती थीं, आत्माकर्षित कर, श्रवण सुधा बरसाती थीं।
रो रोकर 'कैला' लहरो का, गर्जन शान्त कराती थी,
निर्दय 'चारु वदा' भवरी बन, मूक-गान-यश गाती थी।
मधुर, सुरीले गीतों से वे, तृप्त इन्द्रिया कर लेती,
सुध-बुध लूट चैन चित मे दे, नैन उनीदे कर देती।
गान, माधुरी मत्त, मुग्ध हो, श्रवण अमी के तरसे प्रान,
ध्यान धरे, सरबस बिलमाये, खोते सज्ञा सत्ता ज्ञान।
बहुतेरे मेरे श्रवनो ने, सुने प्रान-तोषी प्रिय गान;
सुख सचारी, अति पुनीत, इस गायन से वचित थे कान।
जाग्रत, सुखकारी, विवेक-मय, निश्चय-सुख की प्रगट कला;
अब तक मैने नही सुनी थी, गाननिपुन ऐसी अबला।
इस युवती से मै ही जाकर, कर लूगा कुछ वार्तालाप,
यही बनेगी मेरी रानी, जो सहाय विधि, रख दे थाप।

(कामुक—कुमारी के पास जाकर प्रगट में)

धन्य विदेशी अतिथि! कौन तुम? कहां जन्म है, कौन प्रदेश?
ललित रूप की निरख लोनाई, उपजे उर मे प्रीति विशेष।
झारखण्ड के झकारो की, तुहिन-सताई, तरु-वीथी;
नहि उत्पत्ति भूमि हो सकती, ऐसी सुन्दर सुथरी की।
क्या सुखधाम ग्राम मे आकर, बसी सुन्दरी देवि ललाम,
बन या कृषी देव के सग में, यहाँ विराजी, पाय सठाम?

अपना मजुल गान सुना के, किया तु ग तरु का प्रस्तार ;
काढ़ा बाढ दूर कर ठिठकन, मेटा गाढ़ा पड़ा तुषार ।
किसने स्रजा सुघर, अलबेला, रूप तुम्हारा सुखदाई ;
'जगल मे मगल' करने क्या, यहां मोहिनी तुम आई ?

कुमारी—

सुनो कथा ऐ सुजान गूजर ! बिन श्रोता के ज्यों आख्यान ,
अनसुनते पुरुषो की वैसे, गान-बडाई का क्या मान ।
बनखडी मे भटक रही हूँ, छुटा सग पाऊँ कर खोज ,
शिष्ट 'गूज' को आय जगाया, नही मुझे कुछ गुन पर चोज ।३१०

करुणा पूर्ण टेर धुनि सुन के, जल सैया से जग जाए ,
प्रगट प्रतिध्वनि उत्तर देवे, मन मे ढाढस बँध जाए ।

कामुक—किस कारण यह दशा सुन्दरी,
इस वियोग का पता बता ?

कुमारी—अन्धकार, विस्तार, सघन तरु,
कुटिल पथ, आच्छन्न लता ।

कामुक—सग साथ से तुमको ही क्यो,
केवल विलगा सकती थी ?

कुमारी—मै थी थकी, बिठा शाद्वल मे—
गए, बाट मैं ताकती थी ।

कामुक—छल कर, कपट, अरीती करके,
अथवा कोई कारण और ?

कुमारी—शीतल जल झरने का लाने,
घाटी से लख उत्तम ठौर
कामुक—छोड अकेली तुम्हे नवेली,
अलवेली निर्जन बन मे,
कुमारी—वे दो मूरत ठान पलटना,
बहुत शीघ्र अपने मन मे।
कामुक—छाती हुई अँधेरो ने क्या,
अन्धकार मे फँसा लिया ?
कुमारी—मेरी इस विपत्ति का कारण,
सहज आपने बता दिया।
कामुक—सग-विछोह छोड, कारण क्या,
कहो न क्यों दुखदाई है ?
कुमारी—इससे बढ़ नहिं विपति दूसरी,
जो छूटे निज भाई है।
कामुक—कैसे वे क्या पूरन मानव,
या किशोर वय का आकार ?
कुमारी—हां, नहिं भीनी रेख वदन पर,
ललित रूप दो बन्धु, कुमार।

कामुक—

श्रान्त हल श्रम बैल, हुआ ज्यों सैरिक जोता से मोचन;
कढ़ी लीक से घर आने को, प्रस्तुत था विश्राम मगन।

दिन भर के श्रम मारे जोता, व्यालू पर बैठे हरषाय,
सांझ समय वे युगल युवक से, अति सुन्दर शोभा समुदाय।
हरित लताओं के वितान मे, मैंने देखे यहीं कहीं,
उस सन्मुख छोटी पहरी के, अकों मे जो फैल रही।
पके हुए गुच्छो को चुन कर, तोड रहे थे, वे अगूर,
कोमल लता-पत्र लचका के, फल जिनके होते कुछ दूर।
दिव्य स्वरूप निरख कर उनका, जान छलावा मैं था दग,
या गन्धर्व नगर का बासी, समझा उनको, रूप अनग।
स्वच्छ पवनचारी विद्याधर, किन्नर या कोई दैवी रूप,
इन्द्र धनुष के रगों मे, जो बसते हैं, छविधाम अनूप।
क्रीडा करे, सघन-घन मे जो, खेले, विचरे, करे विहार,
उनके दर्शन की महिमा लख, पूजन किया सहित उपचार।
इन्हे प्रिये जो खोजो तुम तो, तन मन से हो सकूँ सहाय,
स्वर्ग-मार्ग की फेरी सा सुख, सहचर पावै करै उपाय।
कुमारी—सीधी गैल कौन सी गूजर,
मुझे वहाँ पहुचाएगी ?
कामुक—सन्मुख पश्चिम झाडी के जो
लगी, छोर से जायेगी।
कुमारी—किन्तु कठिन है सुजान गूजर, रैन अँधेरी मे जाना,
मदी जोति, नखत नहिं दीखे, पथ नही है पहिचाना।
निपुन पथिक की भी सब विद्या, निश्चय यहां अटकती है;
बिना सहारा, जानकार के, हिम्मत नहिं बढ़ सकती है।

कामुक—

झाडखड की सारी गैलें, एक एक कर जानी हैं,
लता, गुल्म, तरु, सांकर झापे, मेरी सब पहिचानी हैं।
बीहड, भरिक, खड्ड, सब भीटी, खूब हमारी घूमी हैं,
ताल, तलैया, उपजे झाँखर, ऊँची, नीची भूमी है।
ओर-छोर मै जानूँ सब का, बहुत दिनो से बसूँ पड़ोस,
आना-जाना नित्य इन्ही मे, मेरा है दिन रात प्रदोस।
तुम अज्ञात अतिथि हो इससे, यही करो विश्राम, निवास,
इसी परिधि के भीतर बस कर, सुख पावो, मत रहो उदास।
अरुण-शिखा की धुनि होते ही, पौ फटने से पहिले ही;
बिछुड़े सँगी ढूँढ़ मिला दूँ, तब तो मेरी बात सही।
यहां निकट ही कही ओट मे, भूले भटके जो होगे,
उन्हे खोज सन्मुख कर दूँगा, दु ख दूर तब तो होगे।
यदि यह स्वीकृत नहीं तुम्हे तो, कहो ले चलूँ अन्य स्थान;
दीन, किन्तु श्रद्धा परिपूरित, पर्ण-कुटी मे हो मेहमान।
जहां मिल सके परदेशी को, सुख सामग्री का उपचार,
रैन बसेरा कर फिर खोजो, प्रात समय ही राजकुमार।

कुमारी—

हे गूजर! तेरे बचनो को, सत्य मान मैं ग्रहण करू,
निश्छल 'शिष्टाचार' तुम्हारा, हृदय जान विश्वास धरूं।
राजमहल या शिष्ट धनी के, परदे, जाली-सजे भवन;
प्रथम नाम जिनमें पाया था, वहीं कपटमय दे दर्शन

धूमिल पर्णकुटी मे असली, शिष्टाचार दिखाता है,
छान-छपरियो मे ही अपना, शुद्ध रूप झलकाता है।
इससे कम रक्षित, परिपोषित, और ठौर नहिं जाऊँगी;
भय, शका वश पडे पलटना, वहाँ न पैर बढाऊँगी।
कठिन परीक्षा मे सहाय हो! तन्मात्रिक मति मे बल हो!
दया दृष्टि रखना परमेश्वर! गूजर बढ़ो! समय मत खो।

[प्रस्थान]

७

[दोनो भाइयो का प्रवेश]

बडा भाई :—

मन्द-ज्योति हे उड-गन राशी! चमको अपना पिड उघार!
राकापति हे मद चन्द्रमा! उगो, चांदनी चटक पसार।
पथिको से आसीस ग्रहण का, तुम्हे देव, प्राकृतिक स्वभाव
छिटक उजाला पथ दिखा दो, प्रगट करो, निज दबा प्रभाव।
झांको आकर, पीत छुपा कर, हेम अभ्र मे विम्ब प्रकाश
बिखर, हटाना मुख से घूघट, घोर निशा का करो विनाश।
सघन वृक्ष की गुम्फित छाया, कठिन कुहू तमतोम करैं,
अधाधुन्ध छाया वायू मे, यदि नीहार प्रभाव हरै।
तो टिमटिम दीपक ही कोई, छनिक झलक दिखला देता,
छान छपरियो के छिद्रो से, रश्मि-लम्ब-रेखा लेता।

दीपक शिखा अँधेरी निशि मे, 'ध्रुव' सी रक्षक बन जाती,
'शुनः शेफ' सी होती अपनी, उर मे धीरज फिर आती।

छोटा भाई :—

जो न बदा नयनो को यह सुख, पाता इतना ही सतोष ,
कान हमारे चाला सुनते, हल्का होता अन्तर्दोष।
रौंधी डाल, रुँधे बाडे मे, खरिक घिरे छेरी के वृन्द ,
उनका ही मिमियाना सुनता, हो जाता मन को आनन्द।
कहीं बांसुरी की धुनि बजती, सप्तसुरी मय स्वर स्वच्छन्द,
गूजर के नरकट पुगी का, बजता ओट चोट मे छन्द।
कृषक मडैया की सीटी सुन, श्वान दौडता मार छलॉंग ,
रैन काटता टेर मुर्गियां, समय समय मुर्गा दे बाँग।
अगणित तरु शाखा से गुम्फित, अभी नरक सदृश यह ठौर ,
कम दुख देती, जो कुछ सुनता, उर-उछाह होजाता और।
भूली भटकी हुई कुमारी, किन्तु अभागी, दुखी बहिन !
कही डोलती फिरती होगी, प्रान बचाती पड़ैं तुहिन।
झांखर में झाड़ी कण्टक मे, पा न सकेगी सुख का स्थान ,
ठडे भीटे का तट होगा, हा ! कठोर तकिया भगवान।
या विशाल 'इमली' के तरु की खड बीहड़ छालो का टेक;
तकिया बिना, शीश लटकाये, होगी दु.ख से भरी अनेक।
कहा सुनी मे लगे यहां हम, वहां न कुछ अनरथ हो जाय ,
कहीं अचानक भय से डर कर, अनुजा बैठे प्राण गँवाय।

वन्य जन्तु की उग्र क्षुधा का, हो न जाय वह कहीं शिकार;
कहीं न कोई कामातुर नर कर बैठे कुछ पापाचार।

बड़ा भाई —

भ्रम चक्कर मे पड़ो न भइया ! दूर करो यह खुचुर विचार,
क्यो विपत्ति आने से पहले, मन दहलाओ हिम्मत हार।
दु.ख आने से पहिले उसकी तिथि, नर क्यो अनुभूत करै,
सम्भव है सटीक उतरै तो, पहिले ही क्यो डरै मरै।
जो निश्चिन्त समय मे नाहक, भ्रम कल्पित कर क्लेश सहे,
वह तो दुख को न्यौत बुलावै, महा मूर्ख जग उसे कहै।
जिससे हो बचने की इच्छा, स्वय दौड़ क्यो गले लगे,
दैव न मारे मरे आप ही, मन मे यह कहनूत जगे।
भय सकेत झूठ यदि निकले, तो दुर्मति भ्रम की मारी,
आत्म-वचना का फल देगी, अति कटु औ अनहितकारी।
भैया ! मै अपनी भगनी को, दुश्चरिता न विचार करूँ,
धर्म मार्ग से विचलित होगी, कभी न यह दुर्भाव धरूँ।
जिसके उर मे 'नेकी' बसती, वही शान्त निर्भीक रहे;
सकट झेल कुशल रहता है, यह मेरा विश्वास कहे।
शब्द, प्रकाश विहीन दशा मे, उसके दृढ़ औ शान्त विचार,
स्थिर रहते हैं डिग नहि सकते, कर देते हैं बेड़ा पार।
सत्य, तेज उसकी जोती है, सूर्य चन्द्र चूल्हे मे जाय,
धर्म प्रबल है अपनी रक्षा, कर सकता है बिना सहाय।

प्रज्ञा स्वय द्रू ढ़ती प्राय:, शून्य धाम निर्विघ्न प्रशान्त ,
ध्यान धारणा धात्री को ले, पनपै पाकर स्थल एकान्त ।
तब अपना पर झाड फटक के, पक्ष समर्थन करती है ,
जन समूह के भभ्भड़ मे, जो 'क्षीणहीन' हो पडती है ।
कभी कभी ऐसा होता है, लुप्तप्राय वह होती है ,
उन्नति क्या अवनति कर बैठे, प्रस्तुत स्थिति भी खोती है ।

जिसके विमल हृदय में उमँगे, ज्ञान ज्योति का स्रोत अमद ,
वही केन्द्र मे जाय बिराजै, दिन प्रकाश का ले आनन्द ।
किन्तु पुरुष जो निज अन्तस मे, रहे छिपाए नीच विचार
पाप हृदय मे, उसको लगती खरी दुपहरी धुधाकार ।
दिन मे सूरदास सा डोले, गति-मति असुरो की वह धार,
आप पाप को बाप बनावे, अपना नरक आप तैयार ।

छोटा भाई —

ध्यान धारणा व्यापक होती, सचमुच पाकर निर्जन स्थान
शून्य गुफा निश्चिन्त आश्रम जहा उदासी रहे महान ।
नर औ पशु समूह से हट कर, उनकी चहल पहल से दूर,
पूजन गृह सी रक्षित रह कर, सकल विघ्न कर सकती दूर ।

किसी तपस्वी का कुश आसन, पूजन की पुस्तक माला,
कोई लेकर क्या पावेगा, काठ कमण्डल जल वाला ।
पलित केश वाले साधू से, कौन करेगा झगड़ा रार ;
किन्तु रूप जोखिम का घर है, बुरी नियत के कर दे वार ।

यही रूप एक कल्पवृक्ष है, सुन्दर विटप कामना स्थान,
लदा हुआ कचन कलिका से, पहरा चाहै कठिन महान।
फल फूलो पर रहै चौकसी, कर न छुए, हो तेज नजर,
दृष्टि-दोष से दूर, करै नहिं उस पर जादू जरा असर।
अजगर सा कठोर प्रहरी हो, तो रक्षित रह सकती शान,
आतुर ढीठ कुकर्मी नर से, तभी बच सके अचल मान।
इसी भांति तुम कृपन खजाना, गाडी थाथी धन फैलाय,
डाकू चोरो के अड्डो से, कहो 'सुरक्षित' हमे बताय।
औ चाहो हम आशा रक्खे' छांटो वृथा ज्ञान तुम लोग,
'झपका लेगा नयन उपद्रव, पाने पर घातक सयोग।'
किन्तु उपद्रव ताक झाँक मे, बैठा रहै लगाए घात,
मौका पाकर कभी न चूके, तुम कहते क्यों उलटी बात।
उसी तरह इस निर्जन बन से, निस्सहाय क्वाँरी सुकुमार
बिना उठाये ही कुछ जोखिम, निकल सकेगी जगल पार।
रैन अँधेरी तनहाई की, मुझको कुछ परवाह नही,
दुर्घटना का भ्रम दोनो मे, लगा हुआ है थाह नही।
कही न कोई दुस्साहस कर, छूले उसका शुद्ध शरीर,
कर बैठे मुठभेड छेड कर, 'अन-अपनी भगिनी' का चीर।

बडा भाई :—

अनुजा की स्थिति के विचार पर, किया निवेदन अटकलमात्र,
उसकी दशा अरक्षित भइया! है सशय शका की पात्र।

भय आशा समान जब लटके, तब मै कहता यही वचन,
मन की बात तुम्हे बतला दू, मै हूँ 'आशावादी' जन।
भय आशा के पलरे मे जो, निर्णय चढ़े तुला की डोर,
तो स्वभाव वश झुक जाता हूँ,भय तजकर आशा की ओर।
दुर्घटना का स्वप्न न देखू, शान्त-मना, भय दूर करू,
कभी अमगल भाव न लाऊ, मगल ही का ध्यान धरू।४७०
भगिनी नही अरक्षित ऐसी, जैसी करे कल्पना आप,
वह है गुप्त शक्ति बलशाली, भूले भइया! उसकी थाप।

छोटा भाई :—

कौन गुप्त बल किसका कैसा,कुछ भी तो व्याख्यान करो?
वह बल तो ईश्वर का ऐसा, जिसका बधु बखान करो।

बड़ा भाई :—

अभिप्राय उससे भी, लेकिन भिन्न शक्ति यह कोई अन्य;
जो उसके निज की कहलाए, यद्यपि ईश्वरदत्त अनन्य।
उसका नाम 'सत्त' है भइया! नारी दल का बल है 'सत्त',
जो तिय धारे 'बज्र-कवच' यह, दलन कर सके बल उन्मत्त।
तीखे शर धारिनि देवी सी, धन्वा तीर सुशोभित अग,
सर्व गामिनी हो सकती है, उसके 'सत' से डरे अनग।४८०
गहन बनों में, पापी गिरि में, भय पूरित मरु औ जगल,
पटपर में, झाड़ी, कांटों में, उड़ कर जाती सत के बल।
पशुवत निठुर दस्यु या कोई पाठा पर्वत का वासी,
दाग़ कारपन में देने का, साहस करै न अभिलाषी।

तेज, पुनीत, कुमारी का सत, महा महिम्न प्रभाव भरा,
बाल नही बांका कर सकता, कन्या देवी रूप वरा।
देखो, जहां भूत का अड्डा, करता है उत्पात विनाश,
कुजों में, तहखानो में या, 'आसेव स्थल' जो लगै उदास।
खोह, कन्दरो के समीप मे, जहां प्रेत बाधा के स्थान;
हो निर्भय निश्शक शान से, शुद्ध कुमारी करै प्रयान।४९०
गर्व खर्व कर ऐंड़ छुड़ाती, मर्यादा की मूर्ति महान,
निस्सकोच भ्रमन कर सकती, नारी जो हैं सत्य निधान।
कितने तो ऐसा कहते हैं, बाधाए जो डोले रैन,
सती तेज से दूर भागती, रोआ तक छू सकती है न।
अनल तुषार, झील दलदल के, घेरे मे जो फिरें पिशाच,
एक पहर रजनी के बीते, करने लगे तीन औ पांच।
जादू की जजीर तोड़ते, होते ही दीपक के घर,
नीली, दुबली चुरइल डाइन, कुगत प्रेत डोले भू पर।
खान, माद में लुकी कलूटी, नीच पिशाचिनि की छाया,
कुछ अपकार नहीं कर सकती, सत-रक्षित कन्या-काया।५००
जी मे धसा वचन यह मेरा, या अब भी सशय मन मे ?
मैं सतीत्व महिमा पुष्टित कर, दिखला दूगा एक क्षण मे।
पूर्वकाल के बुध जन द्वारा, माननीय जग मे यूनान,
उद्धृत कर उसके पुराण से, 'सत' महिमा कर सकू प्रमान।
मृगयाशील विपिन की रानी, 'दयाऐन' का लख भ्रूभग;
सुर, नर निरख कॉप उठते थे, हो जाता था पगु अनग।

अति उद्दण्ड पुष्प-धन्वा का, विश्व-विजेता वेधक शर ,
भैरव धनुष-धारिणी देवी, सर कर लेती थी बल हर ।
चन्द्रलोक की अधिष्ठात्रिणी, ब्रह्मचारिणी पावन तनु ,
शुभ्र रजत से बाण चला के, वश करती थी हिंसक जंतु ।
पाठा, पर्वत के क्रोधाकुल, चित्रित लहरदार पशुराय ,
बाघिन, सिंह, बघेरा को भी, सत प्रताप से ले परचाय ।
मढी,व्याल-केशी-शिर-मुंडी, क्या थी उसकी गुरु-गुण ढाल ?
अजित कुमारी 'मनवीरा' जो, पहन दिखाती रही कमाल ।
कौमारी व्रत, ब्रह्मचर्य बल, दृढ़ दृष्टी से रखती ढाँक ,
इसके बल कर देती रिपु को, जमा हुआ पत्थल का थाक ।
भव्य भद्रता से दल देती, पशु प्रचण्डता तत्क्षण में ,
बाहर भय, मन पूज्य भावना, उमँगा देती थी तन में ।
ईश्वर को प्रियतम है ऐसा, ब्रह्मचर्य निर्दोष चरित्र ,
जिसके निर्मल उर में व्यापक, हो यथार्थ यह भाव पवित्र ।
अगणित देवदूत किंकर से, आगे पीछे दौड़ें आय ,
दैवी बाना बिना उतारे, हरदम चौकस रहें सहाय ।
पाप और अपराध कारिणी, सारी बाधा दूर भगाय ,
हर प्रकार रक्षा करते हैं, प्रगटित हो या स्वप्न दिखाय ।
कभी स्पष्ट शयनावस्था में, सम्मुख हो या रहें लुके ,
कितनी बातें कह जाते हैं, स्थूल कर्ण जो सुन न सके ।
सम्वादन सम्बंध प्रायश. स्वर्ग निवासी गण के संग ;
(तारतम्य स्वर-स्पर्श शब्द का, तेजोमय करता बहिरंग ।)

मन का मदिर यह निर्मल तन, क्रमश , आत्मतत्व का घर,
भौतिक से आध्यात्मिक बन कर, हो जाता है सुघर अमर।
किन्तु भोग, जब मैन सैन कर, गुप्त इशारे रसिक वचन,
औ विशेष कर ढीठ काम वश, ले शरीर मे पापशरन।
नस-नस अङ्गो के भीतर की, अशुचि भाव तब पाती है ,
सग दोष से स्वच्छ 'आत्मा' मिट्टी मे मिल जाती है।
पापी तन, पशु सी प्रकृती पा, दैवी गुण खो देती है ,
'अधो-दशा' मे खुद गिर करके, अमिट कर्म फल लेती है।
ऐसी वे धूमिल परछाही, घनी भाप सी दीख पडे ,
कब्रस्तान, मकबरा, गुम्बज, मे डोले अकुलाय अडे।
नई खुदी कब्रो से सट कर, बैठी रहे वही बिलमाय ,
प्यारा तन जिसमे थी, अब, शव, उसे छोडते वे घबरायँ।
भौतिक राग भोग मे जकडी, मोह दोष नहि सके छुडाय ,
नीच जनम औ अधम दशा वे, अपनी लेतीं आप बनाय।

छोटा भाई: —

कैसा मोहक मन आकर्षक, दैवी दर्शन शास्त्र सुघर ,
कर्कश नहीं न यह विद्या कटु, जाने जैसी मूर्ख इतर।
यह तो सुरस सुरीली ऐसी, जैसी सूर्य देव की बीन ,
अमृतानन्द पिलाने वाली, जिसमे मन हो जाता लीन।
मिले निमन्त्रित नित यह भोजन, सुधाधार का प्राशन पान ,
अपच अजीर्ण न होने पावे, रहे स्वस्थ निररोगी प्रान।

८

बड़ा भाई :—

चुपके ध्यान लगाकर सुन लो, पद्चालन का स्वर भरपूर ,

शान्त पवन की नीरवता को, भंग कर रहा है कुछ दूर ।५५०

छोटा भाई :—

मेरे मन में यही सोच था, यह क्या आफत, क्या खटका ?

यह हलचल कैसा सुनता हूँ, सचालन पद सरपट का ।

बड़ा भाई :—

निश्चय हम-सा ही कोई नर, निशा अँधेरी मे भटका ,

या कोई जंगल का वासी, अंधकार मे पड अटका ।

महा बुरा भ्रमता डाकूदल, है पुकारता, जन दल का ,

हुल्लड का कारण यह समझूँ, इस निनाद इस हलचल का ।

छोटा भाई :—

दुर्गे ! 'भगिनी पाहि', बढ़ रहा, स्वर समीप दिक् कक्षा का ;

खीचों खग म्यान से बाहर, बदल पैंतरा रक्षा का ।

बड़ा भाई :—

मैं सकेत शब्द देता हूँ, मित्र हुआ तो स्वागत है!
रक्षा हित यह युद्ध, धर्म है, प्रभो! दास, शरणागत है। ५६०

(रक्षक देवदूत गूजर के वेष में प्रगट होता है)

जिज्ञासा कलकल की कर लूँ, जल्दी बोलो हो तुम कौन ?
अति समीप मत बढ़ो नहीं तो, खड्ग घाट उतरोगे मौन।

देवदूत—प्रभो किशोर! तनिक फिर बोलो,
सुन के समझूँ किसका स्वर ?

छोटा भाई—पूज्य पिता के गूजर सा ही,
बोल रहा भइया! यह नर।

बड़ा भाई :—

तुम 'थिरसीस' गान स्वर कौशल, ग्राम्य गान के पारावार;
गति सरिता की मद बनाते, परीवाह को मथर धार।
मीठी गमक बढ़ा देते थे, कस्तूरी-गुलाब में पाट,
जान तान मे भर देते थे, उपत्यका अधिकाती ठाट।
कैसे तुम आ गये यहाँ पर, सुजन कृषक कारण कोई ?
खरके से भागी भेड़ी या, बाल छाग की माँ खोई। ५७०
या अख्ता मेढ़ा गायब है, घेरे से खेड़े को त्याग,
अँधियारे निर्जन कोने तक, उसे ढूँढ़ने आए भाग।

देवीदूत—

प्रभु के प्यारे ज्येष्ठ आत्मज! हे उनके उत्तर आमोद;
ऐसे तुच्छ खेल के पीछे, करने आया नहीं विनोद।

गिरि गह्वर की कथा अनूठी, भू विवरो मय बने शिखर,
नरक लोक जाने का मारग, बना हुआ जिनके भीतर।
सम्भव है यह कथा कहानी, पहुच गई जो सत्य समीप,
अविश्वास अन्धा कर देगा, देखैगा वह यहाँ प्रतीप।

× × ×

द्वैनाशी, सुरसा से जनमा, कामुक जादूगर विख्यात,
इस अरण्य के मध्यस्थल मे, बसता है करता उत्पात।
निज जननी की सकल कला मे, जादू विद्या मे निष्णात,
सघन कुञ्ज 'सैप्रस' छाया मे, करता है नित नूतन घात।
तृषा सताए भटके जन को, धूर्त दिखाकर शिष्टाचार,
मत्र फूक मिश्रित प्याले मे देता है, विषाक्त मद डार।
यह विषाक्त मद घूट कठ मे, उतर बदलती मुख का रूप,
विविध जन्तु सा आनन बनता, पशु मुख, तन नर, दृश्य अनूप।
सिक्के के मुख पर घिसती ज्यो, लगी हुई टकसाली छाप,
त्यो विवेक का चिन्ह वदन से, हाय मिटाता मद्य प्रताप।
यह सब बाते मैने जानी, छेरी दल को वहाँ चराय,
सारा हाल कहे देता हूँ, सुनो ध्यान से कान लगाय।
नीचे तरी उगे तृण ऊपर, खलिहानो से खेत घिरा,
भेड चराता था जा उनमे, ऊँची नीची भूमि फिरा।
नित्य रात्रि में मैं सुनता था, चरती भेड़ो के सँग घूम;
उसी घृणित अँधियारे थल मे, नित निशीथ मे मचती धूम।

गुम्फित कुज अन्ध फेरे मे, महा अँधेरे जन पद मे,
चामुण्डा काली का पूजन, कामुक करे घूर्ण मद मे।
अपने पास फांस के साधन, रखता है रच विविध उपाय,
जादू से मन वश मे कर ले, पथिको का जो भटकै आय।
विकटाकार झुड कामुक का, एकत्रित हो पशू समान,
जुट कर नित्य रैन मे करता, चीत्कार रव, फूटै कान।
ज्यो दहाड चीते करते है, अपने सन्मुख देख शिकार,
बँधे भेडिये जैसे हूले, सदल मचाता त्यो चिग्घार।
बीती सन्ध्या में जब पौहे, चारा पाकर चबा चुके,
भीगे ओस वाण-तृण स्वादित पगुरा, गोडे बीच झुके।
एक मालती मण्डप से मै निकल किनारे जाय डटा,
पवन झोक से गर्व दिखाता, था 'मधुवीती' रूख सटा।
चिन्तित मन को हरा बनाने, छेड़ चिकारा खींची तान,
लगा मौज मै पूरी करने, स्वर मे मिला दिहाती गान।
उस जगल के बीच सुन पड़ा, नित्य निशीथी कोलाहल;
लय-स्वर-ताल-हीन पशु रव से, गूँज उठा वायू मण्डल।
करना पड़ा विराम मुझे पर, सुनता रहा लगाये कान;
सन्नाटा सा छाया सहसा, फिर हुल्लड़ कानो ने सुना न।
निशा नींद की लिए सवारी, निद्रोन्मुख झपकी ले हय,
खीच रहे थैं शय्या युत रथ, लगी मसहरी शिविकामय।
चौकन्ने हो अश्वो ने रुक, खीच कनौटी किया विराम;
सम्भ्रम में पड़ कर सुस्ताए, क्षण भर अपनी गति को थाम।

एक, प्राण प्रेरित स्वर कोमल, गूज उठा मृदु लय विस्तार,
गुरु सौरभ सयुक्त वाष्प सा, फैला वायु लहर सञ्चार।
रजनी की निस्तब्ध शान्ति तो, गायन सुनकर सहम गई,
मत्र मुग्ध सी विह्वल होकर, भाव दिखाती यही भई।
मजुल स्वर यह रहै सर्वदा, व्याप वायु करता सचार,
निज अस्तित्व मिटा इति कर दूँ, दे दूँ अपना कुल अधिकार।
हो सचेष्ट तब कान लगाया, सुना ध्यान से मजुल गान,
क्या प्रभाव था, कुणप अग मे, सहज फूँक देता था प्रान।
सुन-सुनकर पहिचाना मैने, प्रिय स्वर सुन्दर बानी का,
वन्दनीय उस देवी का, उस अनुजा, उसी भवानी का।
भय शोकाकुल छिन्न-भिन्न हो, चकित थकित सा खडा रहा,
लगा सोचने अब क्या करना, मन ही मन मैंने ये कहा।
चेत-चेतरी भोली श्यामा, क्यू गाती यह सुन्दर राग,
घातक जाल पास फैला है, अभी ग्रासने तेरा भाग।
चटपट सरपट ग्रीवा नतकर, दौड़ा नीचे शाद्वल में,
टेढ़ी पग डडी से जिसको, जान चुका था रविबल मे।
कानो ही का लिये सहारा, ढूँढ़ निकाला उसका स्थान,
जहाँ मिला था पहले मुझको, जादूगर बहु रूप निधान।
भाव भेष भाषण बहुरगी, कर सकता इच्छा अनुसार,
जादूगर कामुक बहु रूपी, समय देख करता व्यवहार।
छद्म रूप धारी उस शठ ने, निज स्वरूप था बदल दिया;
मुझे ज्ञान था संकेतों का, इस कारण पहिचान लिया।

मेरी दौड बचा सकती पर, 'होनी' ने पहिले की वार,
दोष रहित अवला भामिनि वो, जादूगर की बनी शिकार।
ग्राम निवासी उसे मान कर, वह भद्रा थी पूछ रही,
नम्र वचन मे जिज्ञासा की, 'क्या देखी दो मूर्ति कही' ?
हिम्मत न थी अधिक डटने की, मनमे चट अनुमान किया,
तुम दोनो को पूछा उसने, उसका आशय जान लिया।
इससे एक साँस मे दौडा पहुँचा यहाँ भगाकर गात,
तुम दोनो को पाया, आगे नही जानता कोई बात।

छोटा भाई—

कैसी कुहू सघन तरु छाया, घोर अँधेरी मिल बैठी,
नरक तमिस्रा तीन लरी-सी, तेहरी ग्रन्थी मे ऐठी।
उधर निबल असहाय कुमारी, इकली कोई सग न साथ
यही हमे विश्वास दिया था, भैया! है वो बहिन अनाथ!

बडा भाई—

भाई! वही भाव है अब तक, दृढ विश्वास दिलाता हूँ,
एक शब्द प्रतिकूल सुनूँ ना, सुनते ही अकुलाता हूँ।
मेरा यही अटल निश्चय है, करूँ न मन मे किंचित् भय,
शत्रु अनिष्ट और जादू की, धमकी भय का होगा क्षय।
औ वह शक्ति जिसे मति भ्रम से, लोग 'अदृष्ट' बताते है;
नाहक़ सशय करके मन मे, दुख को न्यौत बुलाते है।
साधू जन आक्रान्त होयँ पर, वाधाये कर सकै न नाश;
बल उद्दण्ड चकित कर सकता, वश न कर सकै 'मन-विश्वास'।

जो अनिष्ट क्षति देना चाहै, कठिन परीक्षा में दे डाल ,
किन्तु हानि की जगह अन्त मे, पहना दे यश का जयमाल ।
और बुराई स्वय लौट कर, पलटा खाती अपनी ओर ,
होकर अलग भलाई से वह, विलगा लेती अपनी कोर ।
अग्नि-परीक्षा करके देखो, कुत्सित धातु विकार अलग ,
जम जाता है मल जल करके, उसी द्रव्य के ऊपर लग ।
इस अनन्त परिवर्तन में पड़, पाप आप ही पलटा खाय ,
अपना भक्षक आप स्वय ही बन, ईंधन स्वाहा हो जाय ।
यह सिद्धान्त झूठ निकलै तो, टूट पडै स्तम्भित आकाश,
सूखे तृन पर धरी धरा का, ध्रुवा धसै हो सत्यानाश।
आओ ! चलै छुडावै अनुजा, करै धर्म-रक्षा सग्राम !
ईश्वर इच्छा के विरुद्ध असि, कभी न उत्थित हो उद्दाम !
किन्तु नीच जादूगर को मै, निश्चय ढूँढ निकालूँगा ,
'लूटा माल' सबल छीनूँगा, वापस लेकर मानूँगा ।
स्त्री मुख पक्षी, अब्धि सर्प या, नरक-कुण्ड के भीषण दल,
उस काले झण्डे के नीचे, जो आ जुटै भयङ्कर बल ।
विकट निवासी विविध देश के, हिन्द अफ्रिका के जो बीच,
जो उसका दल सबल करै मैं, तौ भी उसकी अलकै खींच ।
जैसा उसका धिक् जीवन है, दुर्गति कर, वैसी दूँ मीच ,
तनिक न डर राकस सहचर का, मैं पकड़ूँगा कामुक नीच ।

देवदूत :—

हाय खेद ! पर मुग्धमना हूँ, लख तेरा निर्भय व्यवहार ,
वीर कुमार धन्य यह हिम्मत, जाऊँ साहस पै बलिहार !
खड्ग प्रयोग आपका उस पर, कोई काम न आयेगा ,
अस्त्र-शस्त्र वह और दूसरा, जादू जिससे जायेगा ।
वो जादू की छडी घुमा के, सकता तन का जोड उधेड ,
रग-पट्ठे सब भुरकुस कर दे, जादूगर से जोखिम छेड़ ।

बडा भाई :—

दया करो तुम हमे बताओ, गूजर ! इस रहस्य का भेद ,
कैसे तुम इस तह तक पहुँचे, कहते जो यह वचन अखेद ।

देवदूत :—

देवी को किस तरह छुडाऊँ, चिन्ता छाई है मनमे ,
याद करूँ गूजर का बालक, दौड-धूप मारे तन मे ।
परिचय उसका, सारा तुमको, अभी सुनादूँ थोड़े मे ;
जादू-जकड़ हारिणी बूटी, दी थी जिसने गोड़े में ।
देख-भाल में अति साधारण, बडा गुनी था करतब मे ,
बनस्पती बिरई के गुन का, जानकार अच्छा ढब मे ।
इस लडके को हर प्रकार की, जड़ी-बूटियों का था ज्ञान ;
प्रात समय जब हरी पत्तियाँ, बिखर खिलें, लेता पहचान ।
बालक मुझे प्रेम करता था, कहता हमें सुनाओ गान ,
मैं भी गीत सुनाता उसको, कोमल लय स्वर, सुन्दर तान

हरी घास पर आसन मारे, गायन सुनकर हृदय प्रसन्न ,
उपकृत औ कृतज्ञ भावो का, नाट्य दिखा, बोला—हौ धन्न ।
बालक ने बदले मे इसके, चमडे की एक थैली खोल ,
शक्ति-शालिनी जड़ी रूखडी, हमे दिखाया खोज टटोल ।
नाम बिरैयो का बतलाके, जो-जो गुण उनका जाने ,
प्रेम सहित गूजर का लड़का, लगा हमै वो समझाने ।
दैवी शक्तिमयी भद्दी-सी, थैली से एक जडी निकाल ,
जिसकी पत्ती कृष्ण रङ्ग की, कॉटे लगे हुए ज्यो बाल ।
यह भी कहा अन्य देशो मे, चमकीले होते है फूल ,
यहाँ नहीं होते ये इसमे, भूमि यहाँ की है प्रतिकूल ।
चमरौधा जूता पहिने नित, कुचला करते इसे गँवार ,
बिरई का गुन वे क्या जाने, कर न सकै इसका उपचार ।
उस 'मौली' से भी बढ-चढ के, इसमे गुन, भैषज्य प्रयोग ,
'हरि माया' ने 'अलीसीस' को कभी दिया था पा सयोग ।
यो कह, दी बालक ने बूटो, कहके 'हियमनि' नाम पता ,
हम से किया इशारा 'रख लो', बडे काम की जड़ी बता ।
जादू-टोना तुरत हटाती, कोड़ी सीड़ भूत, आसेब ,
प्रेत-पिशाच छुड़ाने वाली, यह बूटी तुम हमसे लेब ।
उसका गुन कुछ ख्याल न करके, मैंने लिया जेब मे डाल ,
पर गाढे अवसर पर मैंने, विवश परीक्षा की तत्काल ।
इसका गुन सटीक ही पाया, पहचाना शठ जादूगर ,
रूप बदल जो छुपा हुआ था, डाल फाँस मे, मैं घुसकर ।

इसके बल से साफ आगया, बाहर निकल सहज हो पार,
वह बूटी तुमको मै दूँगा, चलते समय, न हो फिर हार।
निर्भय होकर करो आक्रमण, जादूगर पर साहस से,
पा जावो जो उसे वहाँ तो, दौड छाप लेना कस से।
खण्ड पैतरा भाँज वायु मे, निर्भय दृढ़ता से बन धृष्ट,
स्फटिक पात्र को चूर-चूर कर, ढरका देना मदिरा नष्ट।
किन्तु पकड़ तत्क्षण ही लेना, तुम उसके जादू का दण्ड,
सदल दिखावेगा वह झपकी, घोर युद्ध का नाट्य प्रचण्ड।
'अग्निपुत्र त्रिशिरा-सी ज्वाला', मुख से धूम्र वमन करके,
डरपाएगे किन्तु भगेगे, मत हटना पीछे, तन करके।

बड़ा भाई :—

लम्बो डग धर बढ़ो 'त्रिसीसा' मैं अनुयायी होता हूँ,
रक्षा-फलक हमारे रहना, देवदूत ! मैं जाता हूँ।



६

दूसरा दृश्य—कामुक का विशाल प्रासाद

[दृश्य विशाल राजभवन में बदलता है, जहाँ हर प्रकार के स्वादिष्ट भोजन सजे धरे है। षट्‌रस की सामग्रियाँ मेज पर परोसी धरी हैं, कोमल स्वर से गायन हो रहा है। 'कामुक' अपने दल के साथ दिखाई देता है और देवी कुमारी जादू की कुरसी पर बैठी है। 'कामुक' कुमारी देवी को मद्य का ग्लास दे रहा है। कुमारी झुँझला कर दूर हटाती है और उठने का प्रयत्न करती है।]

(कुमारी की कथा का तारतम्य जो पंक्ति ३७४ पर छूट गया था अब फिर आरम्भ होता है)

कामुक— देवी, उठियो नही,
रहो कुरसी पर बैठी,
जादू की यह छडी,
घुमाई कि तुम ऐंठी।

पथरायेगी स्नायु,
होइ पाषाणी मूरत,
सँगमरमर-सी बदल
जायगी सारी सूरत।

अथवा जड़ से लगी,
विटप हो तुम झूमोगी,
कहना मानो नहीं,
बुरा फल तुम भोगोगी।

'ड्रिफनी' दुर्गति फँसी,
सूर्य का सग छोड कर,
भुगतोगी फल बुरा,
प्रेम मुख, प्रिये! मोड कर।

कुमारी— मूर्ख! न कर यह दर्प,
वृथा तेरी सब माया,
छू न सकै मम सत्त,
यदपि यह भौतिक काया।

जादू बन्धन ग्रसी,
हीन गति भई हमारी;
भगवत इच्छा प्रबल,
भक्त भय-हरन मुरारी।

कामुक—

अनखाओ मत सुनो सुन्दरी,
तानो मत प्रिय भौंह कमान!
इस सुन्दर मुखडे के ऊपर,
क्लीव अनख को मिले न स्थान,
देख मोहिनी मूर्ति तुम्हारी,
हिय मे हरष समाता है,
कोसो दूर भागता है दुख,
नहीं इधर वह आता है।
सारी मौज उमङ्ग सङ्ग ले,
यही बनाएँ अपना स्थान,
जिन्हे कल्पना रच सकती है,
पाकर यौवन का तूफान।
खरी जवानी टटका लोहू,
तन मे लेता रहे उबाल,
जैसे ऋतु बसन्त की कलियाँ,
रङ्गरलियाँ कर रहे निहाल।
देखो कैसी सुरा शरबती,
स्फटिक-पात्र मे नाच रही,
अपनी लपक झपक दिखला के,
मौजी मन को जाँच रही।७७०

सोमलता से खिंची मद्य यह,
औ गुलाब, केवडा जल से,
फैलाती सुगन्ध मन हारी,
लाया हूँ अपने स्थल से।
"नव पथी" से बढ कर उर मे,
मौज उमङ्ग उठाएगी,
जीवन की यह मित्र, तरी दे,
दारुण तृषा बुझायेगी।

'थोन' तिया ने मिश्र देश मे,
इन्द्र दारिका 'हेलिन' का;
सुरा निमन्त्रण किया, किन्तु वह,
समता मे तोड़ै तिनका।

वो मदिरा इस मद के सम्मुख,
कभी न पा सकती सम्मान;
उससे कहीं अधिक अति सुन्दर,
बढ़ कर यह उमगाती प्रान।

अपने तई निर्दयी बनके,
ठान रही हो क्यों यह रार,
प्रकृती ने सुन्दर तन सौंपा,
उससे यह कठोर व्यवहार।७८०

कामुकः—



"शची भोग थाली को मदिरा, होती है उत्कृष्ट महान।
लाता, तो भी जीभ न छूती, दगाबाज ! यह नष्ट प्रदान ॥"

यह सुकुमार परम कोमल तन,
मिला भोग सुख श्रम के काज
हरा भरा रखने को पाया,
रखना प्रन, बचनो की लाज।

साधारण जो नियम जगत मे,
उचित तुम्हे उन पर चलना,
हरी होय यह तबियत जिससे,
सेवन वह अवश्य करना।

श्रान्त, क्लान्त बपु के होने पर,
उन्मादक ले हरा करो;
जो देता हूँ पी लो इसको,
श्रम थकान तो ज़रा हरो।'

नहीं मानती तुम करती हो,
प्रकृति महाजन का अपमान,
दगाबाज़ रिनिया सी बन कर,
तोड रही हो प्रन बन्धान।

जो विपरीत चलीं तो, सोचो—
नर-स्वभाव है नियमाधीन,
नियम तोड़ क्या बच सकती हो,
सारी दुनिया इसमे लीन।७९०

श्रम के पीछे खान-पान है,
सुख सामग्री दुख के बाद,
बिना अन्न-जल दिन बीता है,
कुछ जलपान करो लो स्वाद।

कृपा करो सुन्दरी कुमारी,
अधिक क्लेश अब मत सहना,
हरी भरी तबियत कर देगी,
पियो सुरा, मानो कहना।

कुमारी—

नहीं सम्हाल सकेगी पापी!
तेरी जीभ झूठ की खान,
सत्य प्रतीत नाश कर बैठा,
दे न सकूँ श्रद्धा सन्मान।

यही दीन कुटिया थी पामर!
जिसे बताया 'रक्षित ठौर',
हाय मुझे कैसा भरमाया,
यह तो निकली बिलकुल और।

नीच, धूर्त्त! छल रचना रच के,
छद्म वेश में सम्मुख आय,
झूठा शिष्टाचार दिखाया,
इन्द्रजाल सा जाल बिछाय।

भीषण दृश्य, कुरूप मुखो के,
बता हमे ये राकस कौन ?
दयानिधान ! दीन अबला की,
रक्षा करो कृपा के भौन !
निर्विकार विश्वास हमारा,
छल कर तूने घात किया,
फिर मदिरा की चाट दिखाता,
पशू समझ, क्या फाँस लिया ?

शची भोग थाली की मदिरा,
होती है उत्कृष्ट महान,
लाता तौ भी जीभ न छूती,
दगाबाज यह 'नष्ट प्रदान' !
दुष्ट सुरापी, चषक दिखाता,
फिर षडयन्त्र ! मद्य सत्कार !!
दूर भाग मुख करले काला,
तुझको बार-बार धिक्कार।
व्रत सयम से जो रहते है,
पाते हैं पवित्र आहार,
नेम विवेक हीन जन बनते,
रसना लोलुप सुगम शिकार।८१०

साधु विवेकी जन दे सकते,
श्रेय वस्तु जगती के बीच,
अरपैं जो निन्दित सामग्री,
वे है समझे जाते नीच।
रुचिकर हो जाता है हितकर,
श्रेयस्कर आहार- विहार,
इसीलिए सयत, नियमित जन,
रखता है आचार-विचार।

कामुक—

'सनकी पथ' कठौता वाला,
सयम नियम सिखाता है,
पीवर मुख कृशाङ्ग सुव्रत की,
सदा बडाई गाता है।
उसका वचन मान बैरागी,
आचारी का बाना धार,
कान फूँकते है जनता का,
क्यो मूरख बनता ससार ?
प्रकृति जननि ने कहो किस लिये,
दोनो खुले हाथ फैलाय ?
दानशील हो दी सामग्री,
जिसे भोग जग जीव अघायँ।८२०

दाता माता युग्म पाणि की,
मूठी बन्द नहीं करती,
बसुन्धरा को क्या कारण जो,
बहु विभूति से है भरती ?

देखै सब, पत्ती, पशु, फल से,
धरती, लदी, सुगन्धित फूल,
मत्स्य शिली के अण्ड अखण्डित,
पटे हुए सागर जल कूल।

सब प्रकार के रुचि वाले जन,
अभिरुचि इच्छा के अनुसार,
चीखै स्वाद डकारै भोजन,
खान, पान, कर, विविध प्रकार।

तरु पत्रो पर लाखों कीडे,
खोले बैठे हरी दुकान,
बीन रहे हैं अविकल श्रम कर,
चमकीले रेशम के थान।

सृष्टि चाहती प्राणी पहिने,
वस्त्र चमकने रङ्ग-विरङ्ग;
जैसे माता पुत्र गात को,
सज्जित करती नित, नव ढङ्ग। ८३०

कोई कोना मिलै न खाली,
नाम कमी का रहै नही।
खनिज-रतन से भर निज पेटी,
सृष्टि विभूति लुटाय रही,
यदि समग्र ससार "सनक",
सयम से जी कर।
कन्दमूल फल खाय,
रहै निर्मल जल पीकर,
ऊर्ण वसन तन पहिन,
चीर कौपीन लगावै।
वह क्यू होय कृतज्ञ ?
मौज सुख जो न उठावै,
बिना किये उपभोग,
सृष्टि-वैभव क्या जानै ?
मित भुक् रसना जीत,
कोई उपकार न मानै;
धन्यवाद किस लिये,
किसे फिर दे वैरागी;
जग-पदार्थ बिन चखे,
बने बैठे जो त्यागी। ८४०

सर्बसदाता की विभूति,
भण्डार, भोग घर,
की न जिन्हे पहिचान,
अधूरा ज्ञान धरै नर।
फिर कैसे सज्ञान बन सके,
बिना व्योपरे सकल पदार्थ,
भाव घृणा का ही रक्खेगा,
भोग दे सकै ज्ञान यथार्थ।
ऐसे दाता स्वामी को वह,
जानैगा दरिद्र कञ्जूस,
जीवन जिला बतावै उसको,
वैभवमय, पर मटियाफूस।
जारज सुत वे बनै सृष्टि के,
जो न भोगते सकल पदार्थ,
धर्म-पुत्र ही सम्पति भोगै,
भोग स्वत्व करता चरितार्थ।
वे उपभोग सकल सामग्री,
कैसे कहाँ समायेगी ?
नाकों मे दम कर देवेगी,
सड पड बिगड़ सुखाएगी। ८५०

लदा रहैगा सर पर अपने,
पृथ्वी के उद्भव का भार,
उपज, अभुक्त नष्ट हो करके,
गला घोट देगी दम मार।

पट जावैगी सारी धरती,
पवन चाल रुक जावैगी,
पख असख्य, उडे पछी की,
कृष्ण घटा सी छावैगी।

पौहो की बढती से पशुपति,
होगे सब बेबस लाचार,
जल के जन्तु, पटे सागर मे,
किचपिच कर उछलैंगे पार।

अनखोजे मणि, रत्नाकर को,
चम-चम-चम चमकावैंगे,
मानो उदधि जडा तारो से,
अपनी दमक दिखावैंगे।

प्रभा भरी वे ज्योति फेक कर,
उडगन का मुख फेरैंगे।
धृष्ट बने, निर्लज्ज नैन से,
ये मनि, द्युमणि, तरेरैंगे।

सुनो भामिनी करो न नखरे,
छोडो लाज, बुरी यह बान!
अरी सुन्दरी क्वाँरोपन का,
जग मे नाम मात्र अभिमान !!

रूप, सृष्टि का चालू सिक्का,
धन-सा गुप्त न रक्खा जाय,
लेन देन का फेर परस्पर,
प्रचलित हो यह चाल चलाय।

कृपन द्रव्य सा काम न आए,
पाकर के सुन्दर सयोग;
सारा मजा चला जाए जो,
आप करे अपना उपभोग।

रूप स्वार्थ की वस्तु नहीं है,
परमारथ से होय सबल;
रहै अकारथ बिना भोग के,
सड़ता ज्यो अनचीखा फल।

अच्छापन इसका होता है,
मेल मिलाप प्रेम व्यवहार;
एक दूसरे का सुख भोगे,
दे आनन्द अनेक ,प्रकार। ८७०

जो उभरे यौवन की घड़ियाँ,
अल्हडपन मे दोगी खोय,
नत मस्तक गुलाब कलिका सी,
कुम्हिला जाव, छडी पर सोय।

रूप सृष्टि की शान सुन्दरी,
रूप प्रदर्शन परम पुनीत;
राज सभा मे धर्म-कर्म मे,
भोजन पर्वो पर है रीत।

[सुन्दरता का सार, रूप है,
दर्शन से फडका दे प्रान,
कभी चन्द्र मुख नहीं छुपाता,
झलकै रूप, रमे भगवान।

रूप विश्व का वह जादू है,
आसै तत्क्षण काया प्रान;
मत्र मोहिनी हृदयाकर्षण,
वशीकरण प्रत्यक्ष प्रमान।
जिस पर कर सर्वस्व निछावर,
तन, मन, धन होता बलिदान;
दृग मिलते ही अकथ वचन से,
हो जाता विचित्र उनवान। ८

जीवन, मृत्यु, सुयश, अपयश का,
मिट जाता है सारा ध्यान,
सुन्दरता वह सिद्ध मत्र है,
हर लेती जो सारा ज्ञान।
प्रबल गाँस डामर से बढ़ कर,
इस प्रभाव से दबा जहान,
जग मे इसके सभी उपासक,
राजा, रङ्क, निबल, बलवान।
विधि रचना का चमत्कार यह,
निरख करो स्त्रष्टा का ज्ञान;
दङ्ग हृदय हो उसे सराहो,
सहज मिलै उसकी पहिचान।
देख-रेख वे किये भोग के,
कर न सकै, कोई गुन गान,
हो उपभोग परस्पर का तब,
जाग्रत हो महिमा महिमान।]
विधि की कला, कृती कौशल का,
उदाहरण सम्मुख मे पाय,
चकित बुद्धि मे, विस्मित दृग से,
उत्कण्ठा का भाव समाय। ८९०

इससे रूपहीन बाला को,
उचित है घर मे घुसी रहै,
'घरघुसनी' चरितार्थ नाम हो,
उससे कोई कुछ न कहै ।

रूप रङ्ग मे मन्द योषिता,
चुचके गाल, आकृती मन्द,
करै गृहस्थी घर मे घुस कर,
मिला न हो जिनको मुख-चन्द ।

उनके योग्य यही आयोजन,
करै गृहस्थी का धधा,
सियना सिये, बनाये भोजन,
झारै ऊन लिये कघा ।

लाल बिम्ब से अधर, कमल-दृग,
भाल विशाल सुकटि छोटी,
प्रेम कटार मारती आँखै,
लहराती नागिन सी चोटी ।

रूपहीन बाला क्यूँ पाती,
परहित की ये सुन्दर वस्तु;
सुखद सजीली सुन्दर भामा,
हैं जग भोग दायिनी—अस्तु ! १००

सृष्टि दया करती है जिन पर,
रचती उनका मोहक "रूप",
अभिप्राय कुछ और लक्ष्य कर,
देती है वह रूप अनूप।
तुम क्या जानो क्या मतलब है,
इस रहस्य का सुन्दर बाल!
हो नादान उमर है बारी,
परामर्श ले, समझो हाल।

कुमारी (स्वगत)—

मैंने उचित नहीं समझा था,
जीभ खोल कुछ कथन करूँ,
इस अपवित्र वायुमंडल में,
साँस निकालूँ और भरूँ।
पर न कहीं सोचे यह पापी,
जादू का चढ़ गया प्रभाव,
दृग बाँधे ज्यों उसने मेरे,
मोहेगा त्यों ज्ञान स्वभाव।
पापी दुष्ट! युक्ति का जामा,
पहिना कर, कह रहा वचन,
भ्रष्ट मार्ग को तर्क युक्ति से,
करै समर्थन, वश कर तन। ११०

यह प्रगल्भता ! तर्क सहित अब,
पाप पक्ष हो प्रतिपादन,
धर्म पक्ष अक्षर न निकालै,
करै न उसका मुख भजन।
पाप वचन उद्धत मुख बोले,
धर्म 'मौन मुख' पाती हूँ,
ऐसी दशा देख कर मै तो,
तत्क्षण ही चिढ़ जाती हूँ।

कुमारी (प्रकट)—

दगाबाज ! अभियोग भोग का,
इस प्रकार तू लाता है,
दयामयी निर्दोष सृष्टि पर,
क्यूँ अपवाद लगाता है।
मानो, सृष्टि चाहती प्राणी
उसके बन के भोगा सक्त,
उद्भव भोज्य प्रचुरता सारी,
करै अपव्यय दिन औ नक्त।
खान-पान मे सयम विधि से,
जो निर्देश निभाते हैं।
मिताहार, नियमो पर चलते,
वे नर 'साधु' कहाते हैं। १२०

प्रकृति बडी न्यायी भण्डारिन,
खाद्य पदारथ का सग्रह,
साधु मात्र के ही निमित्त से,
करती है एकत्रित वह।

धर्मात्मा प्रत्येक पुरुष है,
कम विभाग, चिन्ता से चूर्ण,
पा सकता उपयुक्त भाग तो,
होती वो 'कम-मात्रा' पूर्ण।

राग रग मे व्यसनी जन तो,
भोग विलास उडाते है,
थोडो को अत्यधिक भाग दे,
बहुतो को तरसाते हैं।

उस अपव्यय 'अधिकाई' मे से,
'आवश्यकता' यदि पाती बाँट,
तो बहुतो का पालन होता,
थोडो मे कुछ होती छाँट।

सामग्री सब उचित रूप से,
सम हो अधिको मे बँटती,
सम विभाग रखता न उघारू,
ढेरी प्रचुर सहज घटती। १३०

और तनिक भी भार न लदता,
सृष्टि शीश पर ढेरी का,
सर्वस दाता का यश छाता,
शब्द फैल 'स्तुति-भेरी' का।

पशु समान भर पेट डाट कर,
करते जो व्यजन ज्यौनार,
ईश्वर को वे स्मरण न करते,
नहीं मानते कुछ उपकार।

गला ठूँस कर मुख भर लेते,
शठ शूकर से निरे गँवार;
भोजनदाता की निन्दा ही,
करते हैं वे नीच हज़ार।

बकती रहूँ यही मै फिर फिर,
या मेरा भाषण पर्याप्त;
उससे जिसकी धृष्ट अपावन,
अपशब्दो से जिह्वा व्याप्त।

शुचि 'सतीत्व' की शक्ति सदा ही,
प्रखर किरन से घिरी रहै;
पर उसकी निन्दा सुनते ही,
जी चाहै, कुछ जीभ कहै। १४०

किन्तु खेद है 'कथन' हमारा,
एक अरण्य रोदने होगा,
गुनग्राही है हृदय न तेरा,
मन पापी, अनमन होगा।
इस कूटस्थ, रहस्य, भेद का—
भाव पुनीत, महा महिमान,
शुचि कारीपन का प्रतिपादन—
था आवश्यक तभी बखान
जो भावुक, होता तो पाता,
ज्ञान, सुमति, हो शुद्ध शरीर,
तू न इसे समझैगा पापी,
तू क्या जानै 'नीर क्षीर'।
तेरे श्रवण न सुनना चाहैं,
श्रद्धामय है हृदय नहीं,
'लिखी भाग्य' की तू भुगतैगा,
यही दशा जो बीत रही।
इससे भिन्न तुझे नहिं होगी,
सच्चे सुख की कुछ पहिचान,
तू तो इसी योग्य है पामर!
तेरा सुख है—'मदिरा पान'। ९५

कुमति रसीली लम्पट भाषा,
सजी काव्य वचनाऽलङ्कार।
पाप-पुष्टि कर मौज उठा ले,
सीखे पढ़े वचन उच्चार।

अपना मन हर्षित यो करले—
पाप तर्क कर विविध प्रकार,
अपनी हार कायली सुनने—
को न कभी तू है तैयार।

क्या सचेष्ट हो. करना होगा,
चमत्कार मय उग्र प्रयोग,
अब विमुग्ध अपनी, आत्मा को,
उद्दीपन करने का योग ?

निर्मल पक्ष अदम्य 'सत्त' का,
तेज प्रभाव अभी दिखलाय।
परम काष्ठा तक पहुँचा के,
अग्नि-शिखा मैं दूँ भभकाय।
चेतन क्या, जड़ जगत चेत कर,
अङ्ग-अङ्ग अपना थर्राय,
जब तक जादू नष्ट न होगा,
बना रहेगा आप सहाय। ९६०

जादू का यह 'किला-हवाई',
ढह कर होगा चकनाचूर,
पाप वितण्डावाद, तर्क सब,
खल मस्तक से होगा दूर।
मिथ्या भाव समाये सिर पर,
गिर कर उन टुकडो के ढेर,
तिलस्मात का नाश करेंगे,
तेरा सब छल देंगे फेर।

कामुक (स्वगत)—

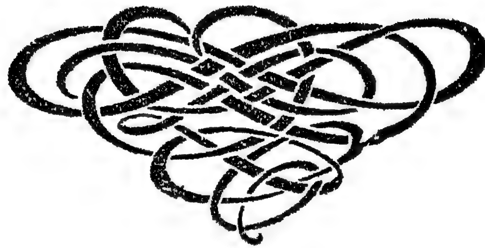
सत्य वचन कहती है बाला,
मिथ्या कुछ न कलाप रही,
मुझको भय लगता है मन मे,
मेरी काया काँप रही।
ओजमयी इसकी बानी मे,
तीव्र शक्ति है, तेज भरा।
मै अमर्त्य हूँ, फिर भी मुझ पर,
पडता है प्रभाव गहरा;
थर-थर मेरा बदन काँपता,
पाला मारा हो ज्यो रूख,
ठण्डी ओस पड गई मुझ पर,
अङ्ग गया ठिठुराके सूख।

शनि के माझी दल पर मानो,
इन्द्र कर रहा वज्र प्रहार,
शृङ्खल-बद्ध पटक नरको मे,
वज्र वचन, त्यौ मारै नार।
करूँ प्रसङ्ग बदल कुछ चर्चा,
फिर इक साहस प्रबल करूँ,

कामुक (प्रकट)—

जाने दो अब ये सब बाते,
यह सब सुन क्यूँ वृथा मरूँ।
यह उपदेश नहीं बक-झक थी,
उन्मूलक औ बैर भरी.
मेरे सम्प्रदाय की शत्रू,
मेरा सर्वस नाश करी।
सुननी चाहूँ नहीं बात ये,
किन्तु मान मै यह लूँगा,
यह उन्माद, रक्त तलछट का
था विकार यह कह दूँगा।
मन की सारी उलझन देवी!
तत्क्षण हो जाएँगी दूर,
पीलो एक घूँट इस मधु को,
उमगावेगी मौज सरूर।

गिरी हुई तबियत सुधरैगी,
सुख का स्वप्न दिखायेगी,
मन को मुग्ध बना देवैगी,
चख लो, मुँह लग जायेगी।



[खड्ग खींचे हुए दोनों भाई घुस पड़ते हैं। काँच का ग्लास कामुक के हाथ से छीन कर जमीन पर पटक देते हैं और तोड डालते हैं। उसका दल भिड़ता है, लेकिन पीछे खदेड दिया जाता है।]

[स्वर्गीय दूत का प्रवेश]

देवदूत—

यह क्या किया कि जादूगर को, भैया तुमने छोड दिया !
धोखा खाया, हाथ न उसका,कान पकड कर मोड दिया ।
उसका जादू दण्ड छीन कर, हाथ पकड के ले लेते,
उसकी मुश्क बाँध कर, कर की,जादू छड़ी पलट देते ।
पीछे तब वियुक्ति का उलटा, मन्त्र उतारू जप जाते;
हीन चेष्टा शून्य शिला के, तब प्रत्यङ्ग खुलने पाते।
बिना किय अब इस विधान के, जादू नही उतर सकता,
पत्थर सी जादू मे जकडी, धरी रहैगी यह बनिता ।९९०

ठहरो मन मे धीरज रक्खो, जरा सोचने दो हमको ।
अन्य उपाय प्रयुक्त करूँगा, रोके रहो जरा दम को ।
'मेली बस' वृद्ध सज्जन ने, यह प्रयोग बतलाया था,
असम, वेणुवादक, गूजर ने, सत्य वचन, गुन पाया था ।
रहती है सन्निकट यहाँ इक, विद्याधरी दया की खान,
अविवाहित युवती दवी वह, कन्या हित मे कृपानिधान ।
एक नदी पर वह जल देवी—रखती है 'फरमान' रवा,
नाम सुवर्णा वक्र गामिनी, बहती जिस पर मन्द हवा ।
देवी नाम-'सवर्णा, शुभ्रा', अक्षत कुमारी, जीवन शुद्ध,
'व्रत' की पोती, 'लोक-कर्ण' की, कन्या परहितकारी बुद्ध ।
'लोक कर्ण' ने व्रत' से पाया, शासन दण्ड, राज्य का भाग,
ब्याहा 'गुण डोलिन' को उसने, अपर नारि से था अनुराग ।
उस ब्याही को त्याग कर दिया, किया हूण कन्या से प्यार,
जीवन उसके सग बिताया, मान उसे जीवन आधार ।
हूण सुता से 'शुभ्रा' जनमी, 'गुण डोलिन' ने ठानी रार,
निज पति 'लाक कर्ण' से उसने किया युद्ध, पति को सहार ।
अपनी सौत और 'शुभ्रा' को, रखने लगी आपदा ग्रस्त,
उनकी पकड-धकड मे लगकर, 'गुण डोलिन' रखती थी त्रस्त ।
एकबार 'गुण डोलिन' ने उस शुभ्रा को औचट मे पाय,
पीछा किया, प्राण की प्यासी, क्रोध भरी, पागल सी धाय ।
यह घातक खण्ड लख उसकी, पड़ी प्राण-सकट बाला,
रोक देख सरिता की मग मे, नहिं बचाव देखा-भाला ।

सुरभित पुष्प मालिका सजके, जाय चढाते धारा मे,
कुमद, कज, पाटल चटकीले, गूँधे फूल हजारा मे।
'मेली वश' कृषाण, वृद्ध वर, स्पष्ट वचन यह कहता था,
जादू जकड छुडा दे देवी ! जकडा तन, खुल जाता था।
विधि पूर्वक अति शुद्ध हृदय से, जो आवाहन उसे करै,
सुन स्वर कम्पित टेर भजन की, तुरत प्रगट हो क्लेश हरै।
दुख मे बनती आय सहायक, कन्या का दे क्लेश मिटाय,
अविवाहित बाला की प्रेमी, रही आप भी वैसी माय !
शरणागत होके देवी की, आवाहन के गीत सुनाय,
ऊँचे स्वर मे टेर लगाऊँ, देउ दोहाई, आजा ! 'माय' !

(प्रथम गीत)

जितै विराजी होउ सवर्णा, दर्शन दे दे माई !
आर्त भक्त पर दया दिखाई ॥
स्फटिक, स्वच्छ, ठडी अति निर्मल, लहर रही हैं डोल,
रुचिर धाम मे होउ जहँ बैठी, सलिल लुकी, पट खोल !
दे, तू, अभय वचन मुख बोल !
बिखरे कुन्तल, अम्बर चर्चित, गुम्फित उत्पल दल मे;
ढरकत बिन्दु सुगन्ध लटन सो, सुरभित चोटी बल मे।
छहरत छवि पल पल मे !
सुयश, भक्ति, सन्मान ध्यान धरि, अरी सवर्णा जननी !
पय-फेन तटनी की देवी ! सब सकट दुख हरनी;
कृपा कुमारी-मंगल करनी !

तेजोमयी, सत्त की मूरत, मिलति न कहुँ गति अन्या
आज प्रगटि द्रुत लाज बचैयो। तुव सरना गत कन्या !!
पुन्य पानि रत्ता, जग धन्या !!!

माता तेरी लगन लगी है! टेर करौ ले प्रान बचाई!
दर्शन दे के जादू हरले! गाढे मे हो मातु सहाई!! १०६०
सुता भई पाषान! दोहाई!

(दूसरा गीत)

प्रकटहु! सुनहु! गिरौ पद तोरे!
उदन्वान कहि करौ निहोरे!!
देउँ दोहाई रत्ता करनी!
"वरुन त्रिशूल! कम्पती धरनी" !!
देवी! छोड़ न अपनी बान !!!

'टीथी' पद की भरकम चाल!
'नीरस' के सिकुडे दृग भाल!!
टोनहे 'करपथ' के हथफेर!
'त्रितन' मीन शख-ध्वनि टेर!!
एक-एक की तोको आन !!!

जादू भरी 'गोलकुश' बानी!
भावी घटना पूर्व बखानी!!
'लोकथिया' के सुन्दर 'कर' की!
तत्सुत 'वन्दर' के प्रभुवर की!!

'थेटी' जगमग पग की आन !
मीठे स्वर 'सुरीन' के गान !!
एक एक महिमा महिमान !!!

'पारथनपी' मृताकी चौरी !
दफ़नाई 'नेपल' मे गौरी !!
शुभ्र 'लिगा' की सुबरन सघी !
काकुल चिकनी करनी कघी !!
वैठि रतन पर्वत के ऊपर !
काकुल छटा साजती सुन्दर !!
सब की आन ! मातु दे ध्यान !!!

सब जलदेविन की सौगन्द !
चितवै चाह भरी चौबन्द !!
नाचहि धारा पर सानन्द !
उठु अब आउ, दिखा मुख चन्द !!
मोहिन अनत ठिकाना !!!

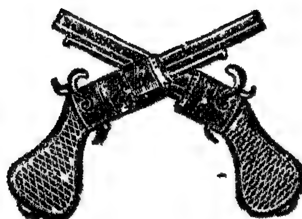
निज प्रवाल मडित शैया तल !
तजि, निकासु, अपनौ मुख पाटल !!
मुख के बल बहती लहरो को,
छीन धार करि जननी रोको !!
चञ्चल मन घबराना !!!

कीजो कृपा, दीजियो धीरज !
देवि ! सदौसी ऐयो !!

जनि विलम्ब कर ! होत दुखी हौ।
पंकज चरण बढ़ैयो !!

ग्रसी कुमारी, जादू बन्धन।
अम्बे ! धाइ बचैयो !!

कन्या ग्रसी छुड़ैयो !!!



११

[सवर्णा ऊपर उठती है, जलदेवियाँ संग में गान करती है।]

सवर्णा—

तृट् परीत तट निकट मनोहर।
सिक्तलता तरु झूमै उगकर॥
रतन जडे है, चमक दमक है।
नीलम पन्ना मढी लपक है।
मेरा कच्छा जगमग करता।
बहता हुआ यही आ अरता॥
मानिक ढेरी चमचम करती।
उस खाडी में, नौका अरती॥
पानी की चद्दर से बाहर।
चिन्ह हीन पैरो को धर कर॥

कोमल मखमल दलसा निर्बल।
गोमुख पुष्प करूँ मे पदतल ॥
उसपर चलूँ न वह झुकता है।
सुनके टेर न मन रुकता है ॥
सुन आवाहन, भक्त सुजान!
प्रकट हुई मै, देख किसान!

देवदूत —

देवि दयाला, करुणा कीजै!
अभय हस्त इत अपनो दीजै!!
छल बल कर औचट मे खीच!
यह पापी जादूगर नीच!!
जादू कन्या अग चढ़ाय!
विवश करै, दे माय छुडाय।!!

सवर्णा :—

छल से फँसी स्वच्छ चरिता का, दूँ यह बन्धन तोर।
सेवा-श्रेय-कर्म मै करती—देख हमारी ओर!
धीरज धर तू शुद्ध कुमारी! करती हूँ उपचार।
दूर करूँगी सब दुख तेरा, जादू अभी उतार।
लाकर निर्मल सलिल स्रोत से, ये अमूल्य जल विन्दु;
छिडक रही हूँ तेरे स्तन पर, भेषज अमृत सिन्धु।

"तीनबार उँगली के पोर,
औ त्रिवार बिम्बाधर बोर।
फिर सफेद पत्थर की चौकी,
जादू के गरमी से धौंकी।
विष लपटा जादू का लासा,
हरती हूँ मैं देख तमाशा।
शीतल शुद्ध आर्द्र करतल को
फेर—हरूँगी जादू बल को।"

(विधान पूरा करके कहती है)

अब प्रभाव सारे जादू का जाता रहा सुन्दरी बाल !
ठहर नही सकती एक छन भी जाती हूँ मै हाल।
वरुणानी कुञ्जो मे हाजिर होना मुझको ऊषा काल,
बाले ! अब तू मुक्त हो गई, उठ हो सुखी निहाल !!

(देवी सवर्णा स्टेज के भीतर नीचे उतरती है—कुमारी अपनी जगह से उठ बैठती है।]

देवदूत—

(देवी की स्तुति करता है।)

'अञ्चईस' का वश पुराना।
जिसमे जनमी, विदित घराना॥ १११०
'लोक कर्ण' कन्यका कुमारी !
रोम-रोम आसीस हमारी !!

बरफ ढपी शेखर की चोटी ।
सहस स्रोत धारै दे मोटी ॥
देवे तोहि अचूक जलदान ।
लहरो से तट भरे समान ॥
ताप निदाघ लपट औ लूह ।
सोख न सके वहाव समूह ॥
सीरे कातिक के जलस्राव ।
गदला करहि न निर्मल स्राव ॥
नाचि लहर, कूलन तक खेले ।
मानिक पन्ना ढेरि ढकेलै ॥
तुव मस्तक उन्नत, सोभित हो ।
भवन बगीचा, गृह, निर्मित हो ॥
उभय कूल मे ठौर-ठौर पर ।
मिर्च मसाला के हो तरुवर ॥

देवदूत (कुमारी से)—

इस अभिशप्त स्थान को छोडो, चलो, न देवी देर करो ।
किया ईश ने बड़ा अनुग्रह, नारायण के चरन परो ।११२०
कही न फिर आकर के 'कामुक', जादू का दे जाल बिछाय;
पापी फाँस न ले फिर छल कर, रच कर कोई अन्य उपाय ।
पल भर भी मत ठहरो, मुख से बोलो मत तुम एक वचन,
जब तक अन्य ठौर नहि पहुँचे, राजी खुशी तुम्हारा तन ।

मै सच्चा पथदर्शक बन के, कर लूँगा चौकसी सभी,
तिमिराच्छन्न अन्ध जङ्गल से, निकल चलो हे देवि अभी!
थोडी दूर यहाँ से, तेरे पूज्य पिता का वास-भवन,
आज रैन मे वहाँ मिलेंगे, इष्ट, मित्र, दरबारी जन।
पूज्य पिता को स्वागत देंगे, राज-सभा मे आए लोग,
देख उपस्थिति इच्छित, उनकी, मान प्रदान दिखा, पद योग।
सारे कृषक वहाँ के वासी, नृत्य करैंगे इकठे होय,
ग्राम्य नाच का दिखा नमूना, थिरकनियाँ लेगे सब कोय।
पहुँचैंगे तब तक हम सब भी, खेल-कूद के ऐन समय,
दूनी होगी धूम खुशी की, सम्भव है कुछ हो विस्मय।
जल्दी से चल दो, वह देखो, हैं नक्षत्र, चढे आकास,
अन्धकार का राज्य बना है, मध्य गगन में निशा निवास।



तीसरा दृश्य

लाडपुर में प्रेसीडेगट का राजभवन

[प्रेसीडेन्ट का प्रासाद लाडपुर में दिखाई पडता है, वहा दिहाती नाच नाचने वाले किसान जमा हैं । रक्षक देवदूत, दोनों भाई और कुमारी संग प्रवेश करते हैं]

देवदूत—

पीछे हटो जगह छोड़ो यह, दिखा चुके सब खेल किसान !
छिटकै सूर्य किरन तब करना, उछल-कूद छुट्टी दिन जान,
मुह मटकाना नार डुलाना, ग्राम्य नाच अब बन्द करो;
छू छैयाँ की लपक झपक का, पद रोको, विश्राम करो ।११४०
चमकीला जामा दरबारी पहनेगे सजधज नागर,
चमक-झमक से ठुमक-ठुमक कर, थिरकैंगे, ताल स्वर पर ।

नाचेगे चञ्चल अँगुठे से, पद गति ललित मनोहर कर।
'मेरु करी' का प्रथम चलाया, सभ्य परिष्कृत नृत्य प्रवर।
'द्रय देसी' जो कृत्रिम गति से, नाच दिखाती शाद्वल पर,
रुनुक झुनुक नूपुर गति, देखो आज सभा मे नाच सुघर।

[देवदूत का दूसरा गीत—उनके माता-पिता के समक्ष, उन तीनों चिरञ्जीवी बालकों को उपस्थित करता है।]

जय हो श्री महराज, सुघर देवी बलि जाऊँ!
धन्य हमारो भाग, बडी एक खुशी सुनाऊँ!
काढ़ बाढ़ तन, खडे, इन्हे पहिचानो प्रभुवर!
निज कुल कीरति देखि, सुखी हो, लखि, त्रय सुन्दर!

प्रभु ने करिके कठिन समय मे, इन लरिकन की रच्छा ?
धर्म, धैर्य, सत् 'गुन' की इनके, करली विकट परिच्छा।
कठिन कसौटी, परखि, नाथ! भेजे यह लरिके,
अमर सुयश को मुकुट, सीस तीनो के धरिके।
सुख विलास, औ व्यसन भोग मारे जीवन मे,
विजय नृत्य करि जीत लेहि पञ्चेन्द्री रन मे।
देत बधाई प्रभो! निरख त्रय मङ्गल मूरत!
स्वागत करि हरिखाहु! सत्य की तीनो सूरत!!

(नृत्य समाप्त होता है)

रक्षक देवदूत (का अन्तिम बचन) :—

उदन्वान को अब उड जाऊँ, जहाँ राजते सुखमय देश,
उस विस्तृत आकाश क्षेत्र पर, जहाँ न मूँदै आँख दिनेश।
'हास्य पुरुष' की तीन सुता का, लहरै गमक भरा उद्यान,
'पारिजात' की छैया बैठी, करै कन्यका तीनो, गान।
शीतल मन्द सुगन्ध पवन मै, पी-पी कर पोसूँगा प्रान,
सघन कुञ्ज तरु की छाया मे, पाऊँगा आनन्द महान।
सजधज लिये रसीला ऋतुपति, आ कल्लोल मचाएगा,
तन का ताप, मिटे, मन चिन्ता, हृदय कमल खिल जाएगा।
कान्ति, प्रफुल्ला, मग्न-मानसा शक्ति त्रय, 'होरा' के सङ्ग,
विश्व विभूति, प्रचुर सञ्चय कर, लाय उडेले रङ्ग-विरङ्ग।
ग्रीषम, कोमल बना सोहाना, यहाँ निरन्तर रहता है।
कस्तूरी सुगन्ध मे लिपटा, पवन पछैया बहता है।
देवदारु तरु की वीथी हो, हवा इधर जब आती है,
चन्दन, 'दारु-चीनि' पादप की, सुखद सुगन्ध सुँघाती है।
'ईरिस' पनिहा धनुष झुकाके, सींचा करती सुरभित कूल,
रँग-रँग के सुमन निकलते, खिलते समय पाय अनुकूल।
बहुरंगी छवि इन्द्र धनुष की, रंगत छवि अपनी खोती;
सतरंगी शोभा से बढ़कर, छवि इन फूलो में होती।
स्वर्गी ओस बिन्दु सिंचन से, सौरभ उनकी अधिकाती,
(जो पवित्र हो कान तुम्हारा, सुनो तनिक मानव जाती!)

सम्बुल पाटल की क्यारी मे, 'दोनिस' लेट लगाता है,
आहत क्षत को पूरा करता, हल्की झपकी खाता है।

इसी भूमि पर 'आसारिन' की, रानी बैठी, दुखित मना,
अनुभव करै वेदना पति की, पीतम तन, 'वाराह हना'।

इससे बडी दूर ऊँचे पर, जगर-मगर का बना जडाव,
'बेनस' का दैवी सुत, नामी, सुन्दर 'अतन' समुन्नत भाव।

प्रेमानन्द-मग्न, आत्मा को, लाड करै, निज हृदय लगाय,
विरह क्लेश चिरकाल भोग के, पीड़ा प्रेम रही जो पाय।

परा प्रेम काष्ठा उसकी लख, स्वय देव वृन्दो ने आय,
इच्छित वर से कर गठबन्धन, दिया चिरतन 'वधू' बनाय।

उसकी निष्कलक कुक्षी से, जनमेगे दो युग्म अपत्य,
'यौवन' औ 'आनन्द' नाम के—इन्द्र वचन यह होगा सत्य।

अब सकल्प विधान हमारा, विघ्न रहित परिपूरन है,
अन्तिम खूट हरी धरती का, पार उतरने का मन है।

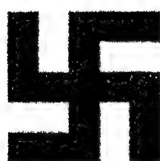
दौड़ लगा या उड़कर जाऊँ, क्षितिज रेख पर जा रुकता,
जहाँ हरी धरती से वह नभ, धन्वा सा झुककर मिलता।

वहाँ पहुच फिर उठकर ऊँचा, चटपट लू इक और उड़ान;
अर्द्ध चन्द्र के शृगो को छू, चूमू पहुँच वहाँ का स्थान।

भक्त बनै जो मानव मेरे वे अनुगामी हो, दे, ध्यान ,
करे धर्म से प्रेम निरन्तर, वारै सत पर तन, मन, प्रान ।
सर्व स्वतन्त्र धर्म है केवल, अति उदार, निर्भय, कल्यान ,
जग-सम्बन्ध मोह-माया मय, लगै प्रेय, पर दुख की खान ।१२००
अनहद नाद लोक से ऊँचा, धर्म उठा, दे सकता स्थान,
'परम धाम' प्रत्यक्ष करा दे साक्षात् ईश्वर का ज्ञान ।

धर्म प्रभाव मन्द जब पड़ता,
सज्जन सहते क्लेश महान,
तभी धार अवतार प्रकट हो,
परित्राण, करदे भगवान । १२०४



'कामुक' में आये गूढ़ शब्दों की व्याख्या

रक्षक देवदूत---

(रङ्ग-मञ्च के लिए निर्देश) देवदूत का स्वरूप 'हेनरी-लाज्र' ने धारण किया था—देवदूत प्रवेश कर दो कार्य करता है। (१) कुमारी और दोनो कुमारो की रक्षा, जिसके लिए देवेन्द्र ने इसको भेजा था—सुरक्षित मार्ग दिखाने के लिए उसको प्रेरित किया था। दैवी सहायता का भी सङ्केत देवदूत स्पष्ट कर देता है, (जब कि तृष्णा और धर्म का सङ्घर्ष उपस्थित होता है।) इस रचना की अन्तिम दो पक्तियाँ इसी भाव की पुष्टि करती है।

धर्म प्रभाव मन्द जब पडता, सज्जन सहते क्लेश महान,
तभी धार अवतार प्रकट हो, रक्षा करते है भगवान।

(२) नेपथ्य मे जो गान करने की प्रथा ग्रीक नाटककारों ने चलाई थी, वह कार्य इसके द्वारा निर्वाह हो जाता है। अभिनय देखने वालों को देवदूत अपने पूर्व भाषण मे ही अभिनय का कथानक, खेल का उत्तरोत्तर तारतम्य सक्षेप मे पहले ही सुना देता है।

यह दृश्य एक घने जङ्गल की यवनिका है जिसके पिछले भाग मे चढ़ाव उतार के साथ पहाडी बनी है। देवदूत उसी पहाडी से उतर कर नीचे रङ्ग-मञ्च पर आता है।

*१–वैजयन्त—

इन्द्र के भवन का नाम है।

२७–शनिश्चर—

ग्रीक पुराण की कथा के अनुसार, शनिश्चर देव, देवतागण के पूर्व राजा थे। जब वह राज सिंहासन से विच्युत किये गये, तब उनका विश्वव्यापी राज्य, उनके तीन लड़कों में बाँट दिया गया। इन्द्र को स्वर्ग का राजा बनाया गया, यम को पाताल लोक का राज्य मिला, और वरुण को समग्र सागर और उसके द्वीप और सारे जलाशय का सार्वभौम अधिकार मिला।

३७–त्रिशूल—

लोहे का दण्ड, जिसके सिरे पर तीन फलक होते है। वरुण का यह राज-चिन्ह, पुरानी कथाओं से सिद्ध है। यह राजशक्ति का चिन्ह माना जाता है।

४१–भद्रजन—

अर्ल आफ ब्रिजवाटर, जो १६३३ ई० मे, वेल्स (Wales) देश की कौन्सिल के लार्ड प्रेसीडेण्ट नियुक्त किये गये थे।

४३–वृष्ट प्राचीन जाति के जन—

नारमन, रोमन, सैक्सन, जिनके मिश्रित रक्त से अङ्गरेजी जाति उत्पन्न हो गई, जो राजा 'एडवर्ड प्रथम, के समय मे

---

*यह संख्या कविता की पंक्ति की है। प्रत्येक टिप्पणी के आगे इसी तरह पंक्ति की सख्या दे दी गई है।

ख्यातनामा हुई। 'केलटिक ब्रिटन्स' के वशावतश होने के कारण वेल्सवासी 'प्राचीन जाति' कहे गये है।

४४–प्रतीति भय की उभय कला—

चतुरतापूर्वक प्रतापमय शासन, जिससे राज्य-नियमो का भी भय रहे तथा प्रजा गण मन मे सन्तुष्ट भी रहे और राज्य-नियमो का पालन करे।

५९ से ८० पंक्ति तक—

मिल्टन, किसी सत्य ही के आधार पर अपने पात्रो की वशावली और उनकी उत्पत्ति दरसाता है। 'कामुक' के व्यक्तित्व मे, बड़े हृदयाकर्षक और मनोमोहक प्रकार से, भोग, विलास का साक्षात् स्वरूप दर्शन कराने का प्रयत्न करता है। इस कारण, 'कोमस' की उत्पत्ति, बेकस (द्वैनाशी) जो मद्य का अधिष्ठाता देवता है और सुरसा, मायाविनी दानवी से, वर्णन की गई है।

५९-द्वैनाशी—

जिसका नाम 'वेकस' मिल्टन लिखता है। वास्तव मे यूनानी लोग इसे Dionysus (द्वैनाशी) यानी इहलोक और परलोक दोनो का विनोश करने वाला मदिरा का अधिपति देवता मानते है।

६१–तुषकण माँझी—

एक आख्यायिका के अनुसार यह विषय दरसाया गया है कि द्वैनाशी (वेकस) ने, टाइरीन (इट्रारिया या टसकिया, आधुनिक नाम टसकनी है) के जल डाकुओ का एक जहाजी बेड़ा केराये पर लिया इसलिये कि वे लाग उसे 'नेसास' नामक स्थान

तक पहुँचा दे। इन माझियो ने दूसरी ही दिशा मे बेड़ा चला दिया जो एशिया की ओर चल पडा। डाकू माँझियो की यह भावना थी कि 'बेकस' को लेजा कर 'गुलामो' के बाजार मे बेच ले। यह छल द्वैनाशी (बेकस) को मालूम हो गया—तब उसने जहाज के डॉडे और मस्तूल (झण्डी जहाज की) को सर्प बना दिया और माझियो को मछली के रूप मे तबदील कर दिया।

६५-सुरसा का अधिकार—

यह प्रसङ्ग मिलटन की गढन्त है। यह प्रकरण किसी यूनानी या रोम के पुराणो मे वर्णन नही किया गया है।

७३-कामुक—

शब्दार्थ इसका (ग्रीक भाषा के Komos धातु के आधार पर) उन्मत्त होकर धूम मचाना, प्रसन्नता से मौज उड़ाना है और यह Comedy (सुखान्त नाटक) का पर्यायवाची शब्द है। अनेक पाश्चात्य प्राचीन विद्वानो ने इस नाम की अनेक व्याख्या की है पर मिल्टन का तात्पर्य इस नाम से चौकन्ना मद्यप, प्रेम और प्रसन्नता का स्वरूप है। मिलटन का 'कोमस' उसकी इसी कल्पना की उपज है। और वह न केवल इन्द्रिय-सुख, भोग और विलास मात्र है किन्तु मिथ्या-भाषण और मलिन पापाचार की पुष्टि करने मे सुबुद्धि के दुरुपयोग का प्रत्यक्ष स्वरूप है। वह हृदय पर प्रभाव डालने वाली प्रकाण्ड युक्ति और तर्क का शास्त्री है और असत्य को सत्य—"पापी वचन को उत्तम तर्क" बनाने मे समर्थ है।

१०७—कनक चक्र '—

सूर्य के रथ का चक्र वो उसका धुरा, आकाश यात्रा के कारण वेग गति से चलते-चलते लाल हो जाता है। सूय के रथ की पहिया सोने की है।

१०८—अतल—

अटलाण्टिक समुद्र को पूर्वकालीन जन, एक नदी समझते थे, जो पृथ्वी के चारो तरफ बहती थी। इससे नदी की तरह इसे ढालू जल राशि मानते थे। अतल-(अटलाटिक महासागर) ।

१०९—धुंधित ध्रुव—

ऊपर का आकाश, सूर्यास्त के समय जिसमे अँधेरा छाने लगता है इस कारण धुँधित कहा।

११९—कच स्रज—

गुलाब के फूल से गुथी माला शिर के बालो की शोभा बढ़ाती है, फूलो की माला, सुरा सिंचन से आर्द्र है, मद्य का सम्पर्क पाके वे चौगुनी सुगन्ध फैलाती हैं।

१२७—'गतिनाद'—

विद्वान् 'पैथा गोरस' के मतानुसार, रात्रि मे नक्षत्रगण, लयमय सुन्दर स्वर अपने पिण्डो मे भ्रमण कर गति वेग से निकालते है। यह ध्वनि साधारण दशा मे मनुष्यो को नही सुन पडती है। समग्र पिण्ड,भिन्न-भिन्न गति द्वारा निस्सृत स्वर से दैवी सुख की समता नभ मे स्थापित करते है। शेक्सपियर ने अपने नाटक

'Merchant of Venice' (मरचैण्ट आफ वेनिस) में भी ऐसा लिखा है—

"There is not the smallest orb that thou beholds't,
But in his motion like an angel sings,
Still quiring to the young eyed chrabims" etc

१५७–हियकटि—

थ्रेस देश की देवी, जादूगरनियो की अधिष्ठात्री।

२५९–गीत—

कुमारी यह गीत अपने भाइयो को सुनाने के लिये गाती है। गान द्वारा प्रतिध्वनि को सम्बोधन करने का दो अर्थ है। एक तो यह कि उसके भाई लोग उसका शब्द सुन कर उसके पास पता पाकर पहुँच जावे, दूसरे यह कि कुमारी प्रतिध्वनि को यह जँचाती है कि मुझे अपने भाइयो से बिछुड़ने का उतना ही दुख है जितना कि देवी प्रतिध्वनि को अपने प्रियतम 'नृकेश' से रहित होने का। प्रतिध्वनि को सम्बोधन करके या 'स्वाग' के बीच-बीच में जो अन्य गान सुनाये जाते थे उससे रङ्ग-मञ्च का प्रभाव दर्शकों के हृदय पर विशेष रूप से पड़ता था और खेल का अभिनय सर्वप्रिय व रोचक बन जाता था—यह एक अच्छी तरकीब थी।

२५९–प्रतिध्वनि प्यारी—

ग्रीक जाति के पुराण की कथा के अनुसार, प्रतिध्वनि, एक देवी थी उसको इन्द्राणी ने मना कर दिया था कि बिना किसी

के बोले, वह कभी न बोला करे, या जब कोई बोलता रहै तब तक वह बिल्कुल मौन रहे। प्रतिध्वनि एक सुन्दर युवक जिसका नाम 'नृकेश' था उसके प्रेम मे फँस गई उस युवक ने प्रेम का प्रतिकारी प्रेम नही दिखाया, इससे प्रतिध्वनि उसके विरह सोच से सूख कर, वाणी मात्र की स्थिति मे रह गई। उधर 'नृकेश' एक तालाब के जल मे अपनी छाया का प्रतिविम्ब देख कर उसी पर मोहित हो गया। उस छाया प्रतिविम्ब से उसकी भेट न होने पाई, वह भी उसी सोच मे गल गया और 'नरगिस' पुष्प के रूप मे बदल गया जिस कारण उसका नाम 'नृकेश' (Naricus) पड़ गया।

२६२–मन्द्र—

एशिया माइनर की एक नदी का नाम है जो बड़े टेडे-मेढ़े मार्ग से प्रवाहित होती थी।

२६४–प्रेम वियोगिनि श्यामा—

इसका तात्पर्य 'अपने प्राण प्रिय जन से भुलाई हुई' है। इसकी एक कहानी है—एक स्त्री 'आयोदीना' नाम की थी, जिसको यूनानी भाषा मे 'बुलबुल' कहते है, उसने धोखे मे अपने बच्चो को मार डाला—वह बुलबुल के रूप मे बदल दी गई। इसका 'गीत' उन बच्चो के स्वयकृत विनाश का करुण-क्रन्दन या विलाप माना जाता है।

२६९–गगन धुन

पिण्डो के परिभ्रमण से नभ मे उनके गति का नाद होता

है उसी से प्रतिध्वनि की उत्पति मान कर गगन-सुता का सम्बोधन दिया है। प्रतिध्वनि गगन मे ही गूजती है। इसे गूँज भी कहते है।

२७२—नभ गायन दोहरावहु—

पिण्डो की गति से जो शब्द निकलता है, उस नाद मे प्रतिध्वनि अपना सुरीला स्वर दे के दोहरी आवाज़ निकालती है। उसी मृदुलय का योग दे कर पिण्डो के गति नाद को मृदुल बना दे—यह प्रार्थना कुमारी अपने गीत मे करती है।

२७४—भौतिक रचना—

मिट्टी से बना चोला, यह नर तन जिसमे पृथ्वी तत्व विशेष, आप, तेज, वायु, आकाश आदि पञ्चतत्व है। इसी से मानव शरीर की रचना है।

२७५—शान्ति शकुन के—

रात्रि की शान्ति को एक पक्षी मान कर यह भाव दरसाया है कि सुनने वालो के कानो तक यह शान्ति रूपी पक्षी गायन के स्वर को निर्विघ्न सुख पूर्वक पहुँचाता है अर्थात् गीत की मधुर ध्वनि रात्रि के सन्नाटा या शान्ति मे साफ सुनाई देती है।

२७७—सूनी रजनी की गुम्बज—

आकाश के अर्द्ध वृत्त गोलाई के कारण रजनी की, एक गुम्बज से, समानता दी गई है—रात्रि की अवस्थिति आकाश में ही मालूम होती है। सूनी का भाव यह है कि नीरव रात्रि है अर्थात् रात्रि में सन्नाटा छाया है।

२७८–स्पर्श परम कोमल शब्दों का—

अन्धकार की उपमा एक पक्षी से दी गई है जो पृथ्वी-मडल को अपने काले परो से घेरे है और मृदुल गान को सुनकर विह्वल हो पर झाडता है, औत स्पर्श, शब्द द्वारा पा, मुग्ध होता है।

२८१–सुरीन :—

नदी के देवता 'एकीलडस' की ये ३ कन्याये हैं, सिसिली द्वीप के समीप एक 'कैला' नाम की पहाडी है, उसीके पास एक द्वीप मे ये रहती थी। उधर से जल-यात्रा करने वाले माझियो को अपना सुन्दर गान सुना कर हृदय मोहलेती और उनका सर्वनाश कर देती।

२८२–सुमन नदीसा :—

नदीसा जलदेवी थी, जो नदी और सारेता मे बास करती थी फूलो का 'लवादा' सा पहन कर वह अग को सुशोभित करती और सुगन्धमय रखती थी—

२८५–कैला :—

सिसिली देश की बडी खतरनाक चट्टान, जहॉ समुद्र की लहरे बडे वेग से हाहाकार मचाती आकर टकराती थी। इस स्थान पर अनेक जहाज टकराकर तबाह और नष्ट हो जाते थे। पौराणिक गाथा के अनुसार 'कैला' समुद्र की देवी थी। 'सुरसा, दानवी ने इसका स्वरूप, भयकर राक्षसी रूप मे बदल दिया और चारों ओर इसको कुत्ते भूकते रहते थे। सुरसा का

यह द्वेष भाव एक व्यक्ति से, उसका प्रेम होजाने के कारण था जिसको सुरसा भी चाहती थी। सुरसा के भय से 'कैला समुद्र मे कूद पडी और भयकर चट्टान बन गई। समुद्र की तूफान भरी लहरे इसमे बडे झोक से टक्कर खाया करती थी।

२८६–निर्दय चारुवदा :—

कैला के सम्मुख सिसली के तटपर 'चारुवदा' एक बडी भयकर 'जल-भँवरी' थी, असली कथा इसकी यो है कि चारुवदा नाम की एक स्त्री थी। देवेन्द्र ने हरक्यूलीज का वृषभ चोरी करने के कारण इसको जल की भौंरी बना दिया।

२८० से २९२ पक्ति तक—

सुरीन और सुरसा का गान चित्ताकर्षक होता था पर उनके गायन का प्रभाव दिल पर बुरा पडता था। या तो श्रोता पागल हो जाता था या किसी और दुर्दशा में पड़ जाता था। किन्तु कुमारी का गाना सुन्दर परिणाम दिखाता था, आत्मा प्रसन्न होजाती थी, मन हर्ष मे समा जाता था और पवित्र, भाव भर जाता था।

३७४–प्रस्थान :—

वे सब रग मच को छोड कर नेपथ्य में चले जाते हैं। कामुक और कुमारी जब स्टेज से हट जाते हैं तब दोनों भाई प्रवेश करते हैं। दोनो भाइयो के भाव और विचार में भेद और विलक्षणता है, बडा भाई दार्शनिक रीतिपर शान्ति की प्रतिमा है। उसे अपनी भगिनी की रक्षा का कोई भय नही है, वह जानता है कि बहिन की सर्व रक्षा, उसका 'सत्त' करैगा। किन्तु छोटे भाई

का मन, ससार के दुष्ट व्यवहार और दुनियादारी की उलझन से भरा है इसी से उसको अपनी भगिनी की दशा सुरक्षित रहने मे शका और भय है, इस कारण वे उसे सदिग्ध बना रहे हैं।

३८५–ध्रुव—

कोई तारा उस समूह या गुच्छे का जो Great bear के नाम से यूनानी जाति आकाश के शिशुमार चक्र मे स्थिर मानती थी और उसी को देख के वहाँ के माँझी जहाज चलाने की दिशा का ज्ञान करते थे, उनको उत्तर या दक्षिणी ध्रुव सा मानते थे।

३८६–श्रुन शेफ—

शब्दार्थ (कुत्ते की दुम)—उन तारो मे से कोई नक्षत्र जो Little Bear के समूह मे दिखाई देता है, फिनीशियन या टाइरियन जाति के मल्लाह इस तारे को देखकर दिशा का ज्ञान करते और जहाज चलाते थे। पक्ति का भाव यह है कि Little bear का तारा जैसे यूनानी जाति के मल्लाहो का पथ दर्शक था और फिनीशियन जाति के माझियो को भी था उसी प्रकार तू भी मेरे लिए रक्षित मार्ग का दिखाने वाला हो जा।

४२३–सूर्यचन्द्र जाँय—

धर्ममना जन के हृदय मे स्वय अन्तर्लीन ज्योति का प्रकाश रहता है जो घोर तिमिराच्छन्न दशा मे भी उसका रक्षा प्रदीप

वन कर सहायक हो जाता है। धर्म-प्राण जन के लिए सूर्य चन्द्रमा का प्रकाश न मिलने से कोई अटकाव नही होता है। वह स्वय ज्योतिर्मय रहता है।

४२६—ध्यान-धारणा—

ध्यान-धारणा, प्रज्ञा (बुद्धि) का विकास कर उन्नति की ओर अग्रसर कर देती हैं, जिस प्रकार एक धात्री बच्चे का पालन-पोषण कर उसे पुष्ट बनाती है उसी प्रकार बुद्धि की चचलता जो चतुर्दिक दौडनेवाले मन के सग से उत्पन्न हो जाती है वह दशा दूर होकर बुद्धि प्रौढ, स्थिर वन जाती है।

४३१—ज्ञान-ज्योति—

मिल्टन ने 'पैराडाइज लास्ट' मे यही भाव इन शब्दो मे प्रकट किया है :—

"The mind is its own place, and in itself
Can make a Heaven of Hell, a Hell of Heaven"

४४०—पूजन-गृह—

Senate House का पर्य्याय पूजनगृह इसलिए कर दिया है कि रोमन जाति अपने Senate House को परम पवित्र एकान्त स्थान मानती थी, जैसे यहाँ पूजा का घर पुनीत और एकान्त समझा जाता है। एकान्त मे कोई विघ्न नही होता मन व बुद्धि स्थिर होकर सिद्धि प्राप्त करते है।

४४५–कल्पवृक्ष—

एक वृत्त 'विशेष जो इन्द्राणी के 'नन्दन-वन' मे लगा था। इस वृत्त की रखवारी अहर्निश जागने वाला अजगर करता था।

४५४–नयन-उपद्रव—

वे दुष्ट-जन जिनसे सर्वदा भय की आशका रहती है। वे मौका पाकर एक कुमारी को असहाय देख कभी न छोड़ेगे। शेक्सपीयर ने "As you Like it" मे लिखा है — "Beauty provoketh thieves sooner than gold."

४७३ से ५३६ तक—

४७३ से ५३६ तक इस काव्य की प्रभावशाली पक्तियाँ है जो इस रचना की मूल-मत्र सी है और 'सत्त' की रत्तण-शक्ति तथा शुद्धाचरण की महिमा दरसाती है। बड़े भाई का भाषण 'सत्त' की प्रशसा मे एक स्त्रोत का सा पाठ है और इस शृगार-काव्य का एक प्रभावशाली सुन्दर मुकुट है जो सर्वश्रेष्ट भावना का निदर्शन करता है। समालोचना के लिये छिद्रान्वेषण का यहाँ स्थान नही है, जबकि भाव विचार और रचना की पदावली सभी निर्दोष और विकाररहित है। इन पक्तियो को कण्ठ कर उद्धरणी करने से मन के भाव और विचार निरन्तर रूप से शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं।

सक्षेप मे व्यवस्था यह है (१) वह 'गुप्तबल या शक्ति, सतीत्व' यानी नारीका 'सत्त' है जिसका तेज उस स्त्री का 'रत्ता-कवच' है।

(२) मनवीरा की 'ढ़ाल' और 'दया ऐन' का धनुष एक रूपक मात्र है जो प्राचीन पुरुषो की 'सत्त' गुण मे पूज्य भावना और दृढ़ विश्वास प्रकट करते है।

(३) भगवान अपने पार्श्वद या दूतो को पवित्र और श्रद्धालु हृदय वाले प्राणी की रक्षा और उनकी शिक्षा के लिये भेजते है उनके मोहमाया ग्रसित शरीर को आध्यात्मिक पवित्रता से परिप्लुत करते है।

(४) पापाचार की अपवित्रता आत्मा की ऐसी कलुषित अधम गति कर देती है कि वह पाप के सग-दोष से, भ्रष्ट होकर आधिभौतिक दुर्दशा मे गिर जाती है और ममता, मोह भोग के बन्धन मे इतनी जकड जाती है कि मरने के बाद भी वह चौरी, (कब्रस्तान) जिसमे उसका शव गाडा जाता है छोड़ने मे घबराती है। उसी शव के पास या उसकी कब्र के पास घूमा करती है।

५०५–दया ऐन—

क्वांरेपन की अधिष्ठात्री देवी जो सदा धनुष-बाण लिये रहती है। इस पर कुसुमायुध का बाण कारगर नहीं होता था। पुष्प-धन्वा इससे हार मानता है।

५१३–गुरूगुणढाल—

'मनवीरा' देवी की ढाल का नाम 'गुरूगुण' था। इसपर तीन दैत्यों के अवयव जड़े थे, तीनो राक्षसो को पख थे, बड़े-बड़े

चोखे दाँत थे, पजे उनके पीतल के थे और सरपर बालो की जगह सर्प लहराते थे। देवताओ की सहायता से, पौरुष नामी पुरुष ने उन तीन राक्षसो मे से एक का सर काट डाला। मनवीरा देवी ने उस मुड को अपनी ढाल के मध्य मे जड दिया, जो कोई उसकी ढाल पर मढे हुये इस भयकर, केश के स्थान पर सर्पाच्छादित शिर को देख लेता था वह पत्थल का थक्का बन जाता था और 'मनवीरा' देवी इस शक्ति-प्रभाव का उपयोग 'कामदेव' को भ्रमित और चकित करने मे समय पर काम मे लाती थी।

५१४–मनवीरा—

बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी। वह पूरी बाढ़ पाकर, अस्त्र-शस्त्र सहित इन्द्र के मस्तिष्क से प्रादुर्भूत हुई। इस देवी ने देवेन्द्र की सहायता देवासुर-सग्राम मे की थी। और अजित कुमारी ब्रह्मचारिणी देवता के नाम से पुकारी जाती है। यह इन्द्र सुता कही जाती है।

५२७–५३६–सम्वादन लेती है—

जिस तरह पार्थिव शरीर अच्युत ब्रह्मचर्य के पवित्र वर्चस्क से आध्यात्मिक तेज प्राप्त कर सकता है, उसी भाँति यह तेजस निर्विकार आत्मा, पापाचार और अपवित्र जीवन के सघर्ष मे पड़ कर आध्यात्मिक सत्ता खोकर भौतिक जड़ वस्तु हो जाती है। अत, सयम, नियम और सदाचार 'आत्मशासन' करने से पापी काया

को स्वच्छ आत्मा की उच्चकोटि मे उठा देता है, किन्तु आत्म-शैथिल्य आत्मा को उसी प्रकार तन्मात्रा के वशीभूत होने से पापी शरीर की तरह दुर्गति प्राप्त कराता है।

५४५–सूर्य की वीन—

स्वर और सगीत के अधिष्ठाता देवता सूर्य।

५४८–अपच—

भाव यह है कि दर्शन-शास्त्र एक प्रकार के नित्य निमन्त्रण के भोजन की तरह है जो यदि नितप्रति मिलता रहे तो भी कभी अजीर्ण और अपच की नोबत नही आती।

५६० रक्षक देवदूत—

रक्षक देवदूत गूजर के वेष मे जिसका नाम 'थिरसीस' है और जो इन दोनो कुमारो के पिता का सेवक था—रग मच पर आता है। इसको कही 'त्रिसीमा' भी लिख दिया है।

५६५ थिरसीस—

ग्राम्य-काव्य मे यह प्रचलित नाम है। वास्तव मे 'हेनेरीलाज' के गुण गायन और प्रशसा मे मनीषी मिलटन ने ये शब्द दो स्थलो पर कहे है। पढ़िये पक्ति ९८ से १०० तक और ५६१-५६८ तक। देवदूत इसी रूप मे प्रगट होता है। 'थिरसीस' अर्ल का बनरखा और कुल का सेवक था।

५८९–सरस्वती—

प्राचीन गाथा के अनुसार कला और ज्ञान की शाखाओ की अधिष्ठात्री नव देवियाँ थी। यहाँ सरस्वती देवी साहित्य और छन्द रचना की प्रेरक देवता है। मिल्टन का स्वय-कथन है कि मुझमे कविता अन्तर्लीन दैवी प्रेरणा से उत्पन्न होती है। अर्थात् कविता की रचना बिना 'वीणा-पाणि' की कृपा या प्रेरणा के नही होती।

५९०–जादू चढे द्वीप—

उदाहरणार्थ 'सुरसा' का द्वीप और 'कालेपसो' का द्वीप, जिसका वृत्तान्त 'ओडिसी' ग्रन्थ मे है। जिसको महाकवि होमर ने लिखा है।

५९१–चामीराशि—

यह बड़े भीषण कुरूप राक्षस थे। इनका शिर सिंह की तरह, दुम सर्प की तरह और शरीर बकरी की तरह था। प्रति स्वाँस के सग धूम्र और ज्वाला मुख से निकाला करते थे।

६२४–मधुवीती—

मधुपीती या मधुवीती नाम की एक फैलने या ऊपर चढने वाली लता जिसके फूल देखने मे सुन्दर मीठी सुगन्ध देनेवाले लाल, पीले रग के होते है।

६३१–नींद का सवारी—

नीद (अर्थात् रात्रि) का यह भाव दिखाया है, मानो सटी, मसहरी लगी गाडी मे रात्रि या निद्रा लेटी है। गाडी

घोडा से खीची जा रही है, धीरे-धीरे चल रही है। 'कामुक' के दल का कोलाहल सुन कर घोडे चौकन्ने हो गये, कुछ उत्तेजित होकर भड़के, पर एकदम सन्नाटे के छा जाने के कारण भय दूर करके घोड़ो ने विराम लिया। और परम मृदुल मनोहारी गीत, जो कुमारी प्रतिध्वनि को सम्बोधन कर गा रही थी सुन पडा।

६३५–प्राण-प्रेरित स्वर—

प्रतिध्वनि के लिए जो गीत कुमारी ने पक्ति २५९ पर गाया है उसका इशारा है—कामुक भी वह गायन सुन कर मनोमुग्ध हो गया था। पढो पक्तियॉ २७३ से २८० तक।

६४०–अस्तित्व मिटा—

कुमारी का यह परम कोमल और मृदुल स्वर कूजित गान सहसा, सुन पडा और रात्रि की नीरव शान्ति (silence) चकित हो ऐसी मुग्ध होगई कि वह अपना अस्तित्व ही समर्पण करने पर तुल बैठी। भाव दरसाया है कि यदि यह मञ्जुल मृदु गान निरन्तर होता रहे तो वह अपना स्थान स्वय समर्पण कर अपनी स्थिति की इति करदे। सन्नाटे मे कुमारी के मृदु गीत का स्वर व्याप कर सर्वत्र छा गया नीरवता जाती रही।

६९३–हिन्द और अफ्रिका—

प्राचीन काल में यूरोप निवासियो को हिन्दुस्थान और अफ्रीका का कुछ ठीक पता नहीं मालूम था। इसलिये विचारे

सारी भीषण घटनाओं और अद्भुत प्रपञ्च का देश इनको समझते थे। यहाँ के निवासियो को बडा विकट योद्धा मानते थे।

७२७–मौली—

यह एक रूखडी थी, जिसे Hermes (Mercury) बुध देवता ने 'अलीसीस' को दिया था। सुरसा के जादू भरे द्वीप के निकट जब 'अलीसीस' का जहाज जा रहा था उसी समय जादू का परिहार करने वाली यह रूखडी दी ताकि उस पर जादू का कुछ प्रभाव न पडे।

७२८–हरिमाया—

'आरकेडिया' (यूनान मे) की एक देवी। अपोलो (सूर्य देव) ने इस देवी का पीछा किया था। देवी ने सूर्य से पिंड छुडाने के लिए सहायता की याचना की। इस प्रक्रिया पर कुपित होकर सूर्य ने उसे एक वृक्ष बना दिया। यह वृक्ष 'Laurel tree' कहा जाता है और 'अपोलो' के पूजन के विधान मे पवित्र माना जाता और चढाया जाता है।

७७३–नवपंथी—

लीदा और इन्द्र के सयोग से उत्पन्न हुई 'हेलेन, को (जो ट्रोजन महायुद्ध की कारण नायिका थी) 'थोन' की धर्मपत्नी, 'पोलीदमनी' ने मिश्र देश मे सुरा निमन्त्रण दिया था—उस सुरा का नाम 'नवपथी' था। यह एक विचित्र उन्मादक सुरा थी जो उर की समग्र चिन्ता को दूर कर देती थी और चित्त

को शान्त और प्रसन्न बना देती थी। महाकवि होमर ने 'अली-सीस' नामक ग्रन्थ मे इसका वर्णन किया है। यह वह उन्मादक था जिससे सारा शोक वो दर्द दूर हो जाता था, क्रोध शान्त हो जाता था, और सब रञ्ज को भुला देता था। जिस दिन कोई इसकी एक घूँट भी पी लेता, उस दिन स्वप्न मे भी, दुख पास नही फटकता था चाहे उसके माता-पिता ही क्यूँ न मर गये होवै।

७७९ से ७९४ पक्ति तक—

सृष्टि ने तुमको सुन्दर रूप इसलिए नही दिया है कि तुम मनमानी करो, किन्तु मानी हुई कुछ शर्तें (प्रतिज्ञा) करा के दिया है, जिनमे सबसे मुख्य यह प्रण है कि तुम इस सुन्दर रूप-वान शरीर को थकान पाने पर आवश्यक तन-हरी करने वाली वस्तु का सेवन कर तरोताज़ा बनाओ। खेद है कि तुम, तन-मन को हरा करनेवाला यह चषक, जो मै अर्पण कर रहा हूँ, पीने से मुकर रही हो और अपने थके और श्रम से दुखित शरीर का स्वास्थ ठीक करने मे असावधानी (गफलत) कर रही हो। सृष्टि ने सुन्दर रूप की धरोहर ·तुम्हे सौंपी है, और ऋण की तरह दिया है—उस मूलधन की वह रक्षा चाहती है। तुम यह ध्यान न छोड़ो। तुम महाजन सृष्टि के साथ छल कर रही हो—तुम उसकी रिनियाँ हो। उसके दिये हुए सुन्दर स्वरूप को सदा सुन्दर बनाये रहो—बिगाड़ की कोई बात न करो। यह सुरा-पान उसकी रक्षा का उपाय है। इससे इनकार मत करो।

८१४-आचार-विचार—

यह भाव पलटू (Plato) के विचारानुसार है। वह कहता है कि आत्मा की दो वृत्ति होती है—एक वैकारिक दूसरी निर्विकार। जब निर्विकार वृत्ति आत्मा की विकारमय वृत्ति को पूर्ण प्रभावान्वित कर लेती है तब आत्मा श्रेय वस्तु की ही इच्छा करती है और भ्रष्ट वस्तु से घृणा करती है।

८१५ से ९०४ पक्ति तक—

'कामुक' का वितण्डावाद और सारा तर्क, जो वह कुमारी के नियम और सयम के सिद्धान्तो के विरुद्ध प्रकट करता है उसमे प्रधान दो बाते है—

(१) सृष्टि ने प्राणियो की अभिरुचि और इच्छा की पूर्ति के लिए, सारी उत्तम सामग्री और विविध पदार्थ, प्रचुरता से पाट ,दिया है—उसकी यही भावना मालूम पडती है कि समग्र जीव उनका उपभोग करे—यदि हम उसका उपयोग और उपभोग करने से इनकार करते हैं तो हम दोषी ठहरते है। सृष्टि के सर्वस्वदान का अनादर करते हैं। अर्थात्--

(अ) उदारता के साथ सवस्व पदार्थ की दाता, माता प्रकृति के प्रति हम अकृतज्ञता का भाव रखते है। उसके दिये पदार्थो का भोग न कर अपमान करते हैं।

(ब) सृष्टि के,अभुक्त पदार्थ, प्रचुरता मे एकत्र होकर पट जायँगे और उसका गला घोट देगे।

सयम, नियमससारिक सुख नहीं दे सकते है। 'कामुक' 'चारवाक' के मत का शिष्य है—यही भाव वह धारण करता है।

८४१–सर्वसदाता—

पृथ्वी, रत्नगर्भा, वसुन्धरा, वसुमति के नाम की सर्वस्व प्रदान करने वाली धरती, जिसमे एक दाना बोया जावे तो अनेको पैदा करके देती है, कितनी उदार है, हर प्रकार की सामग्री जीवधारी के लिए तैयार रखती है। विरक्त को सृष्टि की दया से प्राप्त उन नियामतो का आधा भी ज्ञान नहीं होता, फिर भी ऐसे अधूरे ज्ञान वाले लोग उस सृष्टि से नफरत करते है। उस वस्तु से वृथा घृणा करना, जिसका सम्पूर्ण ज्ञान न हो—मूर्ख के लक्षण है।

८४७–जारज सुत से—

जो माता-पिता का असली बेटा होता है वही उसकी सम्पत्ति को भोग सकता है वही अधिकार पाता है, यह न्याय और धर्म-शास्त्र की बात है। जो सम्पत्ति का उपभोग नही करते, वे अनधिकारी (यानी दोगले पुत्र) माने जाते है भोग करने या न करने ही से असली या नकली सन्तान के पहचानने की विधि है।

८६६–अपना उपभोग—

केवल रूप तो कोई सुख या आनन्द, रूपधारी को नही दे सकता यदि वह अपना रूप अपने पास लिये बैठा रहे। हाँ, जब उस रूप का आनन्द लेनेवाला कोई भिन्न व्यक्ति होता है तब परस्पर का व्यवहार सुख-भोग प्रदान करता है।

९१५–दगाबाज—

कुमारी, यहाँ 'कोमस' के समक्ष मे कथन कर रही है। ९१५ से ९३६ तक की पक्तियो मे कुमारी, कामुक के कुतर्कों का उत्तर देती है, और यह समझाती है कि यदि मितभुक् सयमी सज्जनो को उनकी वाञ्छा पूर्ति के लिए सृष्टि के पदार्थों का कुछ भाग और मिल सकता, जो थोडे से विलासी, व्यसनीजन अत्यधिक मात्रा मे भोग कर रहे है तो पदार्थों की प्रचुरता मे कमी हो जाती और सब लोग दाता के वास्तव मे कृतज्ञ रहते और धन्यवाद देते। लोभी, भोजन-भट्ट, स्वार्थीजन कभी ईश्वर की कृतज्ञता नहीं प्रकट करते।

इस रीति पर यदि ससार के वैभव उपज और उद्भव पदार्थों की समभाग मे उत्तम बाँट की जावे तो 'कामुक' के समग्र तर्क की उपादेयता नष्ट हो जाती है। यह बात कुमारी स्पष्ट कर देती है कि इन्द्री-लोलुप ,जन को 'सत्त' और 'सयम' का सिद्धान्त समझा देना असम्भव है। वह तो इन्द्री-सुख के ही पीछे मरता रहेगा।

९७८–उन्माद रक्त तलछट—

अर्थात् देवि आपका यह विचार कुछ रक्त विकार के कारण उसी तरह दूषित है जिस प्रकार कफ, पित्त, वायु की शुद्ध या अशुद्ध अवस्था के कारण मनुष्य का स्वभाव शान्त या अशान्त बन जाता है। जब कफ रक्त विकार प्राप्त कर नीचे, शराब की तलछट सा जम जाता है तो रक्त दोष पैदा करता है और वही

उन्माद या पागलपन का निदान बन जाता है। तुमारे रक्त मे भी कुछ विकार है और तलछट जम गया है जो पागल की तरह ये वचन बक रही हो।

९९३–मेली वश—

नामधारी 'वर्जिल' कवि के काव्य का एक गूजर, कदाचित् मिल्टन का सङ्केत यहाँ स्पेन्सर (Spenser) कवि से है।

९९८–सवर्णा—

सुवर्णा नाम की एक नदी, जिसका 'लैटिन' शब्द से यह रूपान्तर है। सत्तेप कथा—यह एक जल देवी (विद्याधरी) थी जो सुवर्णा नोम की सरिता पर अनुशोसन करती थी। इस रचना मे मिल्टन ने, इसका नाम, इसलिए प्रविष्ट किया है कि अभिनय के दर्शक, अभिभावुक हो जायँ। यह स्वाभाविक है कि स्थानिक सम्बन्ध की महिमा और उसको चर्चा सुनने से हृदय उन्मुख हो जाता है। सवर्णा की कथा अनेक लोगो ने अनेक रूप से लिखी है। 'वेल्स' देशवासी इस प्रसङ्ग को सुन कर, स्थानिक सम्बन्ध का वर्णन जान सन्तुष्ट ही हुए होगे—सत्तेप गाथा ये है।

ट्रोजन-महायुद्ध के महावीर 'वरत' ने अपने मरण-समय मे 'एलबियन (Albion) देश का राज्य अपने तीन पुत्रों मे विभक्त किया। 'लोककर्ण' उन तीनो बेटो मे से एक बेटा था। लोककर्ण ने, 'गुण डोलिन' (कार्नवाल के राजा 'कारोनियस' की कन्या) से ब्याह किया, किन्तु गुप्त रूप से, 'इक्स्टी लिडिस' को जो जर्मन देश के एक राजा की सुता थी हृदय से प्रेम करता था। इस प्रेम-

मयी को, उसने आक्रमणकारो 'हूण' सेना को दमन करके, पकड लिया था।

जब 'कारोनियस' मरगया लोककर्ण ने 'गुण डोलिन' को तलाक दे दिया और प्रकट रूप से 'इकूस्ट्री लिडिस' के सग रहने लगा। इसके योग से एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम 'शुभ्रा' (सवर्णा) रक्खा। इस पर चिढ कर 'गुणडोलिन' ने एक सेना तैयार की और पति से लड़ी। पति को सग्राम मे उसने मार डाला। कोई लिखता है उसी ने सवर्णा और उसकी माता को नदी के प्रवाह मे फेकवा दिया, कोई कहता है नही सवर्णा स्वय अपनी सौतेली माता के भयकर क्रोध से बचने के लिये तथा बदला लेने वाले उसके क्रूर कर्मों से रक्षा पाने के लिए घबरा कर स्वय नदी-प्रवाह मे कूद पडी। यह नदी उसी के नाम से पुकारी जाती है और यह उसी नदी की अधिष्ठात्री देवी बनादी गई। सुवर्णा नदी का और सवर्णा देवी का नाम है यह ध्यान रखने की बात है—नाम मे समानता होने से कही भ्रम हो जाता है।

१०१८—नीरस—

समुद्र का एक देवता, जिसका निवासधाम सागर के अन्तम्तल मे है इसकी कई देवियाँ-कन्याँ थी। ग्रीक पुराण इस वृद्ध देव को परम चतुर और कभी न चूकनेवाला.समुद्र का वृद्ध मनुष्य बताते हैं।

१०२१—अस्फोदल—

कुमुद के सरोखा सुगन्धित पुष्प, जिसमें पीले तुरुही के सदृश फूल होते है।

१०५०-अम्बर —

सुगन्ध विशेष—अम्बर शब्द के प्रयोग से यह प्रकट है कि सवर्णा की चोटी के बाल सुवर्ण से पीले रग के थे और मधुर सुगन्धमय थे।

१०६२-उदन्वान :—

प्राचीनतन जन समुद्र के स्थान मे 'उदन्वान' नाम की नदी को इस पृथ्वी के गोल धरातल के चारो ओर बहती मानते थे। और उसीको उसका अधिपति देवता जानते थे। यह द्यावा-पृथ्वी का पुत्र 'टेथी' का भर्ता और अनेक नदी-देवता और देवियो का पिता था।

१०६३-त्रिशूल :—

वरुण का त्रिशूल, अन्तर्लीन भाव उन हाहाकारी समुद्र की लहरो से है, जो तट पर आकर टक्कर खाती और भयकर निनाद करती है। देवदूत 'थिरसीस' गूजर के वेष मे जल-देवी सवर्णा का आवाहन करता है। अनेक प्रतापी शक्तिमान मूर्तियो की दुहाई देता, सब की एक एक करके देवी को।आन देता है ताकि उनके निहोरे पर वह आकर प्रकट हो जाय।

१०६५-टीथी :—

उदन्वान की स्त्री, जलदेवता और जलदेवियो की जननी।

१०६५-नीरस :—

देखो १०१८ पंक्ति की टिप्पणी।

१०६६–करपथ —

'प्रोटियस' नाम का सागर-देवता जो भिन्न-भिन्न रूप बदलने की शक्ति रखता था। वरुण देव का यह चरवाहा था, जल-धेनु के वत्सो को यह चराया करता था। इसको त्रिकाल का बोध था।

१०६६–त्रितन —

वरुण-देव का तूर्यनाद करनेवाला एक गण, शखनाद करके हिलोरा देने वाली उथल-पथलकारी लहरो को यह शान्त और स्तम्भित करता था इसके कटि-प्रदेश के नीचे का भाग मछली के सदृश था।

१०६८–गोलकश :—

एक मछुआ जो समुद्र-देवता के रूपान्तर मे कर दिया गया था। माँझी लोग इसे भविष्य-भाषी मानते थे। आगम की बात सत्य-सत्य यह कह देता था।

१०६९–लोकथिया —

उपनाम 'ईनो' जो 'कद्मस' की कन्या थी। यह अपना शरीर समुद्र के समर्पण कर लहरो मे कूद पडी इसका पुत्र 'मली सरट' उसके गोद में था। (अपने पति 'अथाम' के क्रोध से बचने के लिये वह समुद्र में कूदी थी)। वरुण देवता ने उसे समुद्र-देवी बना दिया और 'लोकथिया' नाम देकर इसे 'शुल्क देवता' के नाम से प्रख्यात किया। इसलिये 'सुन्दर कर' का विशेषण दिया गया है।

१०६९–तत्सुत बन्दरपति :—

'मलीसरट' नामधारी 'ईनो' का पुत्र। ग्रीक लोग इसका

नाम 'पलायमान' और रोमन लोग इसे 'पोर्टमनुस' (बन्दरगाह का देवता) मानते थे। जहाज जहाँ लगर डालते है वह स्थान 'बन्दर' कहा जाता है।

१०७०—थेटिस :—

'नीरस' समुद्र-देवता की कन्या, 'पेलीउस' की स्त्री और 'एकिलीज' की माता, महाकवि होमर ने इसको 'रजत पदतला' लिख कर इसकी ख्याति के लिये इसे उसी नाम से विदित करा दिया। मिलटन 'जगमग पद की चाल' लिखते है।

१०७०—सुरीन —

सुरीन नाम की ३ जल-देवियाँ थी। (१) पारथनपी (२) लिगा (३) ल्यूकोसिया। 'पारथनपी' की चौरी (कब्र) नेपलनगर (इटली के प्रायद्वीप) मे बनी थी।

१०७४—रतन पर्वत .—

इसका तात्पय या तो (१) कडे पत्थर की चट्टान या (२) गिरि शिला से है, जो रतन की तरह दमकती चमकती थी, क्योकि समुद्र की लहरे टकराती थी और सूर्य की किरण पडने से उनमे उज्वलता का भान होता था (३) ये सारी बाते एक कहानी के रूप मे है। तो क्यो न यह गिरिखडी भी हीरा जवाहर की बनी या जड़ी मानली जाय क्योकि उधर 'सुवरन कवी' का जोड़ तोड है।

१०८५—सवर्णा का प्रकट होना :—

सवर्णा ऊपर उठती है। रग-मच पर आरम्भ मे भी 'रक्षक देव दूत' के उतरने का दृश्य है। यह काम या तो मशीन के द्वारा

दिखाया जा सकता है या एक खटके पर लगा दरवाजा रगमच के मध्य मे धरातल पर बना हुआ हो।

१०९०–गोमुख पदतल—

गोमुख एक जगली पीले रग का अगरेजी फूल है। 'मखमल' शब्द का प्रयोग इस पुष्प के चिकनी ऊनी तलका भाव यथार्थ रूप से झलका देता है।

१११०–अब्धईश —

सवर्णा के पिता 'लोककर्ण' 'वरत' के पुत्र थे। 'ट्राय' (Troy) के अब्धईश का पुत्र 'इनियस' था, 'ईनियस' का पौत्र सिलवियस था। 'सिलवियस' का पुत्र 'वरत' था।

अंगरेजो मे यह पुरानी दन्तकथा है (जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नही है) कि 'वरत' से 'बरतानिया' नाम निकला। 'बरत' ने, जो ट्रोजन 'इनियस' के वश मे था, 'एलबियन' (जो ब्रिटेन का पुराना नाम है) को विजय किया और अगरेज जाति का पुरखा माना गया। यह कहानी 'लाया मान' के 'ब्रट' अख्यायिका मे लिखी है।

१११७–मस्तक उन्नत —

इस रूपक मे महाकवि मिलटन के मस्तिष्क मे कुछ भ्रम इस कारण उत्पन्न होगया है कि नदी और देवी सुवर्णा और सवर्णा नाम की है। जो रूपक यहाँ दिया गया है वह स्त्री के शरीर के शोभा का नहीं है किन्तु नदी की शोभा का द्योतक है। प्रशगवश यह पक्तियाँ देवी को आशीर्वाद दे रही है न कि नदी

को, एक नामता के कारण, महाकवि को कुछ सम्भ्रम-सा हो गया है। इस पुस्तक मे भी कही सवर्णा की जगह सुवर्णा और सुवर्णा के स्थान पर सवर्णा छप गया हो तो पाठक भ्रम मे न पड़े।

१११८–मिर्च मसाला—

वेल्स देश मे ये वृक्ष नही उगते। सुवर्णा नदी के सम्बन्ध मे महाकवि के यह अशीर्वचन है जो कवि कल्पना मात्र है। सुवर्णा नदी के तराई की शोभा और सुन्दरता बढे यही हार्दिक भाव कविवर का मालूम होता है। सुवर्णा नदी वेल्स देश की नदी है।

लाडला गढ़ या लाडपुर के राजभवन के सन्निकट ही यह नदी रही होगी। आशीर्वाद का प्रयोजन यह ज्ञात होता है कि देखने और सुनने वाले, स्थानिक विषय की चर्चा सुन कर हृदय मे गदगद हो और अडोस पडोस की बाते सुन कर चाव से मन लगावे। अभिनय के देखनेवाले इससे अवश्य ही प्रसन्न हुए होगे। सारांश इस रूपक का यह था कि इस नदी के द्वारा व्यापार मे उन्नति हो और वहाँ के निवासियो के श्री-समृद्धि की वृद्धि हो।

११३७–तृतीय दृश्य—

जङ्गल और रात्रिवाले जादू के महल का दृश्य, लाडलागढ़ (इसका नाम तृतीय दृश्य के आरम्भ मे लाडपुर भी लिखा है) के प्रासाद मे बदलता है। इस समय दिन का पूर्ण प्रकाश है। दिहाती लोग, स्टेज पर नाच रहे है। उसी समय 'रक्षक देवदूत' और 'अर्ल' महोदय के लडके मञ्च पर प्रवेश करते है।

११३९–नार डुलाना—

अशिक्षित ग्रामीणजन, अर्ल को प्रतिष्ठा और आदर सूचक सम्मान देने के लिये, नाचते नाचते कहीं सिर झुकाते थे, कभी गरदन हिलाते थे। यह एक भद्दी रीति थी। किन्तु अब नवीन परिष्कृत नृत्य करने वाले नागरिक शिक्षित पदगति सञ्चालन कर उत्तम नृत्य दिखायेंगे।

११४४–मेरुकरी—

उपनाम (Hermes) यह देवताओं के दूत थे टखने पर उनके पर लगे थे और स्फूर्ति और उच्च प्रकार की सुन्दरता के तद्रूप थे। पारा का नाम 'मरकरी' है जो भूमि पर गिरते ही चचल गति से फैल जाता है स्थिर नहीं रहता। मेरुकरी का नृत्य भी वैसा ही चचल था।

११४५–द्रयदेसी—

ये वन-देवियाँ थी, जो नृत्य कला मे बडी निपुण थी।

११५९–अन्तिम वचन—

इस 'कामुक' के स्वांग का 'अन्तिम वचन' देवदूत सुनाता और गाता है। जिस प्रकार आरम्भ मे 'पूर्वभाषण' देवदूत ने दिया है—उसी के मुकाबलेका यह 'अन्तिम वचन' भी है जो सारी कविता का निचोड़ है। देवदूत जनता को उपदेश देकर इस ग्रन्थ का सार बता रहा है और इन्द्री भोग जनित नश्यमान, अस्थाई सुख की तुलना, पवित्र, दैवी अनन्त अनुरागमय प्रेम के साथ करके समझाता है कि भौतिक सुख एक प्रेय मात्र वस्तु है।

आत्मा को शान्ति और सन्तोषमय पूर्ण-विराम धर्म-प्राण और धर्म-प्रेमी, बन कर ही मिल सकता है। अनन्त-प्रेम तथा चिरन्तन सुख उसी धर्मात्मा को भाग्य से मिलता है।

११६७-शक्ति त्रय—

'जीयस' की बेटियाँ, जो पवित्र जीवन को आनन्दित और सुखमय बनाती थी। वे तीन रूप की थीं, उनका नाम 'कान्ति, प्रफुल्ला और मग्नमानसा' था।

११६७ होरा—

ऋतुओ की देवता। ज्योतिष का शब्द है, इसीसे Hour निकला है।

११७३-ईरिस :—

इन्द्रधनुष की अधिष्ठात्री देवी।

११७९-दोनिस—

'दोनिस' नाम का एक सुन्दर युवक था—'वेनस' (प्रेम की देवी) इसको प्यार करती थी। जगली सुअर का शिकार करने के समय, वह सुअर के दाँत से चोटीला हो मारा गया। 'वेनस' को उसकी मृत्यु का बडा शोक हुआ, यह शोक उसका इतना गहरा था कि देवताओ ने सहानुभूति करके 'वेनस' को छ. मास पृथ्वी पर रहने की आज्ञा दे दी। (पृथ्वी पर बसन्त ऋतु इसी के प्रभाव और स्थिति के कारण बनी रहती है और शीतकाल में उसका अवसान हो जाता है)। यह कथा फिनीशियन जाति की है, जो 'दोनिस' को 'तम्मुज' का तद्रूप

मानते है। 'सीरिया' देश की स्त्रियाँ उसके लिए आज तक विलाप करती हैं।

११८१—आसारिन—

'वेनस' देवी की भावना वा पूजा पूर्व से पश्चिम में फैली। रोमन जाति की 'अष्टआरती' और यहूदी जाति की 'अष्टरथ' यही देवी है। इसकी पूजा बडे धूमधाम और भोगरचा के साथ की जाती है। मद्य-मांस का प्रयोग भी पूजन-विधान मे रहता है।

११८४—अतन—

प्रेम का अधिष्ठाता देवता, 'अतन', 'वेनस' का पुत्र था। वह 'आत्मा' (मनुष्य की रूह) को प्रेम करता था। 'अतन' ने 'आत्मा' को मना कर दिया था कि वह कभी उससे यह न पूछे, न ध्यान मे लाये कि वह कौन है। परन्तु इस पर 'आत्मा' की उत्कण्ठा बढ़ी और जब 'अतन' सो रहा था 'आत्मा' उसी विचार से उसका मुख देखने लगी। जिस तेल की बत्ती को लेकर वह मुख देख रही थी, उसमे का, एक बूँद तेल 'अतन' के ऊपर टपक पड़ा। 'अतन' जाग उठा और भाग गया। 'आत्मा' उसके प्रेम में पगली होकर चारों ओर उसे ढूँढ़ती फिरी और 'वेनस' को आतङ्क और दुखदाई व्यवहार भोगती रही। अत मे, इन्द्र ने, उसकी दशा पर तरस खाया और उसको अमर बना दिया। उसका गठबन्धन 'अतन' के संग करके, उसकी स्त्री बना दिया। मि० वेल, टीकाकार कहते हैं— इस कथानक में 'आत्मा' से मतलब मनुष्य के जीव का है जो सयम नियम, सस्कारों से संस्कृत होकर, इस

दुनिया मे दुख-सुख भोग कर सारा आन्तरिक विकार धो देता है और दैवी सच्चे सुख का भोग करने के योग्य पात्र बन जाता है।

११९२–अन्तिम खूट—

पुराने समय के यूरोपवासी समझते थे कि 'स्ट्रेट आफ जिबराल्टर' ही पृथ्वी का अन्तिम छोर है।

११९६–चन्द्र शृङ्ग—

अर्द्ध-चन्द्र के दो नोकीले सिरे।

११९९–स्वतन्त्र—

इन अन्तिम पक्तियो का यह भाव है कि यदि तुम्हारी हार्दिक इच्छा हो कि तुम सर्वतन्त्र हो, सम्पूर्णता और आनन्द के कूट पर पहुँच जावो, तो आवश्यक है कि तुम धर्म के अनुगामी बनो। यदि इस सदाचार के सत्पथ मे तुम्हारे अभ्यास या कर्म मे, कोई अड़चन या विघ्न पडे, या आन्तरिक निर्बलता अनुभव हो तो धीरज रक्खो, परमात्मा स्वय तुम्हारी सहायता करेगा और अनायास तुम्हारी रक्षा करेगा—यह अटल विश्वास हृदय में रक्खो।

असली स्वतन्त्रता यह नही है कि जो जी मे आवे वही तुम कर डालो, किन्तु जो उचित है, जो धर्म है वही कर्म निस्सङ्कोच करने का नाम स्वतन्त्रता है। अपेक्षा, उपेक्षा की वहाँ गुञ्जाइश नही है। निष्काम, निर्विकल्प कर्म ही धर्म है जो श्रेय का प्रदाता है।

मन की उठी बात चट कर डालने का नाम स्वतन्त्रता नही है, यह तो अधम, नीच प्रवृत्ति की गुलामी की प्रेरणा है—इसलिये ऐसा कर्म स्वतन्त्र कर्म नही। उचित, अनुचित के ज्ञान किये बिना, कर्म अधम हो जाता है। स्वतन्त्र वही है जो उचित, शास्त्रोक्त रीति पर चल कर, धर्म-प्रेरित कर्म करता है। स्वेच्छाचारी तो किसी कामना या वासना या अन्य भावना का दास होता है—स्वतन्त्र कर्म नही करता। कर्तव्य का पालन ही स्वतन्त्रता है अन्यथा दास-भावना की गुलामी है।

इन अन्तिम पक्तियो को महाकवि बडे विजयी शब्दो मे लिखकर दैवी-बल पोषित अजेय धर्म मे दृढ़ विश्वास रखने के लिए अनुरोध करता है। और यही इस स्वाँग की सारी रचना की मूल शिक्षा है। अर्थात् धर्म की सदा विजय होती है, धर्म की सहायता ईश्वर करता है, धर्म मे दृढ़ विश्वास रखनो चाहिए, यदि ससार के जीव अपना शाश्वत कल्याण चाहते हैं। सत्य ही धर्म है, सत्य ही स्त्री का अपरिमेय बल है—"सत्येनास्तिभय क्वचित्"—सत्य ही ईश्वर है—

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वातिवायुश्च—सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

॥ इतिशम्॥